इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ७ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११६ जुलाई २०१४

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव–नेरी, डाकघर–खगल
जिला–हमीरपुर–१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२–२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

धर्म और समाज	प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	३
भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद	आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री	८
संकल्प पाठ में ब्रह्माण्ड की स्थिति	डॉ ओम दत्त सरोच	२२

वनस्पति विज्ञान

भारतीय सृष्टि सिद्धान्त और वनस्पति विज्ञान	डॉ. ज्योति गुप्ता	२७

सृष्टि आख्यान

पंजाब की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार	भूमिदत्त शर्मा	३२
हमीरपुर की गुगा गाथा में सृष्टि विचार	डॉ. रमेश शर्मा	३४
सृष्टि रचना की जलबिम्बी गाथा	चंचल कुमार सरोलवी	३७

ध्येय पथ

ऋषि परम्परा पर परिसंवाद	रवि ठाकुर	४८

सम्पादकीय

गंग सकल मुद मंगल मूला

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस के अयोध्या काण्ड में पुण्यसलिला गंगा मैया के प्रति ये भावोद्‌गार व्यक्त किए हैं–

गंग सकल मुद मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब मूला।।

अर्थात् गंगा समस्त आनन्द मंगलों की मूल है। वे सब सुखों को प्रदान करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने वाली है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि जिस प्रकार देवताओं को अमृत, पितरों को स्वधा (हवि की आहुति) तथा नागों को सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार गंगा जल मनुष्यों को तृप्ति प्रदान करता है।

यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा।
सुधा यथा च नागानां तथा गंगाजल नृणाम्।।

२१ जून, १९५४ को पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने अपनी वसीयत में लिखा है– ***गंगा भारत की प्राचीन सभ्यता की प्रतीक रही है, निशानी रही है, सदा बलवती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा।***

भारतवर्ष की सांस्कृतिक मान्याताओं से अभिभूत मुस्लिम कवि अब्दुर्रहीम खानखाना अपनी दोहावली पुस्तक के मंगलाचरण में गंगा मैया की स्तुति करते हुए लिखते हैं कि हे सर्वसमर्थ गंगा माता! तुम विष्णु के चरणों में प्रवाहित हुई हो और शिवजी ने तुम्हें मालती की माला की भांति शीश पर धारण किया है। तुम मुझे विष्णु नहीं, शिव बनाना जिससे मैं तुम्हें अपने सिर पर धारण कर सकूं–

अच्युत चरण तरंगिणी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरि कीजौ इन्दवभाल।।

गंगा भारत के लोक जीवन एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों का सतत पुण्य प्रवाह है। इसमें भारत के जन–जन की अखण्ड आस्था है। गंगा प्रदूषण मुक्त हो। गंगा की पावनता जनमानस की आकांक्षा है। भारत सरकार की गंगा सफाई के प्रति संकल्पबद्ध सक्रियता से सर्वमंगलदायिनी गंगा की अविरल निर्मल धारा को प्रवाहित करने में भारतीय संस्कार सम्पन्न नेतृत्त्व अवश्य सफल होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

संवीक्षण

धर्म और समाज

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

समाज के लिए धर्म की आवश्यकता है या नहीं? इस प्रश्न पर कुछ अपने विचार प्रकट करना ही आज इस लेख का उद्देश्य है।[1] प्राचीन और नवीन अथवा पूर्व और पश्चिम इन दोनों के संघर्ष से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है। पूर्वी सभ्यता सदा से धर्म की पक्षपातिनी रही है और उसने धर्म को समाज में सबसे ऊँचा स्थान दिया है। पश्चिमी सभ्यता इस समय चाहे उनकी विरोधिनी न हो, पर उससे उदासीन अवश्य है और कम-से-कम समाज की उन्नति के लिए वह उसे आवश्यक नहीं समझती। उसकी सम्मति में बिना धर्म का आश्रय लिए भी नैतिक बल के सहारे मनुष्य अपनी वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति कर सकते हैं।

यद्यपि पहले पश्चिम भी धर्म का ऐसा अनन्य भक्त था जैसा कि इस समय भारतवर्ष। पर मध्यकाल में कई शताब्द तक वहाँ धर्म के कारण बड़ी अशांन्ति मची रही। धर्ममद से उन्मत्त होकर समाज के बड़े-बड़े विद्वानों और संशोधकों के साथ वह सलूक किया जो लुटेरे मालदारों के साथ करते हैं। ५० वर्ष तक लगातार जारी रहने वाला यूरोप का धर्म युद्ध प्रसिद्ध ही है। इस्लाम ने जो सलूक ईसाइयों के साथ किया उसको जाने दीजिए, क्योंकि वह एक भिन्न धर्म था। ईसाई धर्म की ही दो शाखाओं ने, जिनका नाम कैथलिक और प्रोटेस्टेंट है, एक-दूसरे के साथ जैसे-जैसे अत्याचार और अमानुषिक बर्ताव किए हैं, उन पर अब तक यूरोप का इतिहास रुधिर के आँसू बहा रहा है। इसलिए अब इस सभ्यता और उन्नति के युग में पश्चिम निवासियों को यदि धर्म पर श्रद्धा नहीं है जो उनके पूर्वजों की थी तो वह सकारण है। यद्यपि पूर्वापेक्षा अब उनके धर्म का भी बहुत कुछ संस्कार हो गया है और शिक्षा की उन्नति के साथ-साथ जिसमें यूरोप और अमरीका ने सबसे अधिक भाग लिया है, उनके धर्म में भी सहिष्णुता, स्वतंत्रता और उदारता की मात्रा बढ़ गई है। तथापि धर्मवाद के परिणामस्वरूप जो कड़वे फल उनको चखने पड़े हैं, उन्होंने उनको धर्म की सीमा नियत कर देने के लिए बाधित किया, तदनुसार उन्होंने धर्म की अबाध सत्ता से अपने समाज को मुक्त कर दिया। अब वहाँ यही नहीं कि समाज की शासन सत्ता में धर्म कुछ विक्षेप नहीं डाल सकता, किन्तु व्यक्ति स्वातंत्र्य और सामाजिक प्रबंध में भी कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकता और बहुत-सी बातों के समान धर्म भी एक व्यक्तिगत बात मानी जाती है, जिसका जी चाहे, किसी धर्म को माने, न चाहे न माने। मानने से कोई विशेष स्वत्व पैदा नहीं होते, न मानने से कोई हानि नहीं होती।

यह तो रही पश्चिम की धार्मिक अवस्था, अब रहा पूर्व। यद्यपि पूर्व में सर्वत्र ही धर्म का प्राधान्य है तथापि भारतवर्ष में तो उसका एकाधिपत्य राज्य है। यद्यपि वहाँ की शासनसत्ता पश्चिमी

१. प. चन्द्रत्रधर शर्मा गुलेरी जी का यह लेख जून १९२० में प्रतिभा पत्रिका में प्रकाशित हुआ है जिसका महत्त्व धर्म और समाज की दृष्टि से सदैव अक्षुण्ण है।

लोगों के हाथ में होने से अब उसमें वह हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तथापि भारतीय समाजों में और उनकी विविध शाखाओं में उसका अप्रतिबंध अधिकार है। हम जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चाहे किसी दशा में रहें, कुछ करें, धार्मिक बंधन से मुक्त नहीं हो सकते।

हमको केवल अपने पूजा-पाठ या संस्कारों में ही धर्म की आवश्यकता नहीं किन्तु हमारा हर काम चाहे वह सामाजिक हो या व्यक्तिगत, धर्म के बंधन से जकड़ा हुआ है। यहाँ तक कि हमारा खाना-पीना, आना-जाना, सोना-जागना और देना-लेना इत्यादि सभी बातों में धर्म की छाप लगी हुई है। हम हिन्दू होकर सब कुछ छोड़ सकते हैं पर धर्म को किसी अवस्था में भी नहीं छोड़ सकते। हमारे पूर्वज धर्म को ही अपना जीवन सर्वस्व मानते थे और यही उपदेश शास्त्रों में वे हमको भी कर गए हैं। मनु लिखता है—

धर्मएव हतो हंति धर्मोरक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानोधर्मो हतोऽवधीत्।।

प्राचीन आर्य लोग धर्म को केवल परलोक का ही साधन नहीं मानते थे, किन्तु इस लोक का बड़े से बड़ा सुख भी धर्म के बिना उनकी दृष्टि में हेय था। त्रिवर्ग में जिसका सम्बन्ध संसार से है धर्म ही सबसे पहला और मुख्य माना गया है। कणाद तो अपने वैशेषिक दर्शन में अभ्युदय की नीति भी धर्म पर ही रखता है। यथा—

यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

अतएव हम अपने शास्त्रों को मानते हुए और पूर्वजों पर श्रद्धा रखते हुए किसी दशा में धर्म की उपेक्षा नहीं कर सकते।

पश्चिम की शिक्षा का प्रभाव जिन लोगों पर पड़ा है, वे चाहे हमारे स्वदेशी बांधव ही क्यों न हो, हमको भी यह सलाह देते हैं कि हम भी यदि इस जातीय उन्नति की दौड़ में भाग लेना चाहते हैं तो धर्म की कोई ऐसी सीमा नियत कर दें, जिससे आगे यह अपने पैर न फैला सके। उनका यह कथन है कि जब तक हमारे हर काम में धर्म का पचड़ा लगा हुआ है, हम समय की गति के साथ नहीं चल सकते और न अपना कोई जातीय आदर्श बन सकते हैं। जो लोग हमको यह सलाह देते हैं, हम उनके सद्भाव में कोई संदेह नहीं कर सकते और यह भी हम मानते हैं कि देशहित की प्रेरणा से ही वे यह सलाह हमको देते हैं। पर हाँ यह हम अवश्य कहेंगे कि वर्तमान धार्मिक अवस्था के विकृत स्वरूप को देखकर और हमारे धर्म के वास्तविक तत्त्व पर गम्भीर दृष्टि न डाल कर ही यह सम्मति दी जाती है। यदि धर्म को उसके वास्तविक रूप में देखा जाए तो वह कदापि उपेक्षणीय नहीं हो सकता। यद्यपि विदेशियों के संसर्ग से या हमारे दौर्भाग्य से यहाँ भी संकोच नहीं है कि सभ्यता के आदि आर्यों का धर्म मतवाद से सर्वथा पृथक् है।

इस मतवाद को धर्म समझने का यूरोप में यह परिणाम हुआ कि वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र से ही अलग नहीं किया गया किन्तु मानसिक और नैतिक उच्चभावों की रीति के लिए भी अनावश्यक समझा गया। उसका सम्बन्ध केवल उपासनालयों से रह गया और वह भी रविवार के दिन घंटे दो घंटे के लिए। बहुत से स्वतंत्रता देवी के उपासक तो इससे भी मुक्त हो गए। हम उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हैं, यदि वे ऐसा न करते और हमारी तरह से अपनी विचारशक्ति को

कल्पनाशक्ति के अधीन कर देते तो आज उनके देश में विद्या और बुद्धि का यह विकास, कला-कौशल की यह उन्नति और उद्योग तथा व्यवसाय का यह प्रभाव देखने में न आता। यदि हमारे धर्म की भी ऐसी ही व्यवस्था हो और वह वास्तव में मतवाद का प्रवर्तक हो, तब तो हमको भी कृतज्ञता के साथ उनकी यह सलाह मान लेनी चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो हमें धर्म का वास्तविक तत्त्व उन्हें समझाना चाहिए।

हम यहाँ पर कह देना चाहते हैं कि मत या संप्रदाय के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग करना भी हमने अधिकतर विदेशियों ही से सीखा है, जब विदेशी भाषाओं के 'मजहब', 'रिलीजन' शब्द यहाँ प्रचलित हुए तब भूल से या स्पर्धा से हम उनके स्थान में 'धर्म' शब्द का प्रयोग करने लगे। परन्तु हमारे प्राचीन ग्रन्थों में जो विदेशियों के आने से पूर्व रचे गए थे, कहीं पर भी 'धर्म' शब्द मत, विश्वास या संप्रदाय के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ, प्रत्युत उनमें सर्वत्र स्वभाव और कर्त्तव्य इन दो ही अर्थों में इनका प्रयोग पाया जाता है। प्रत्येक पदार्थ में उसकी जो सत्ता है, जिसको 'स्वभाव' भी कहते हैं, वही उसका धर्म है। जैसे वृक्ष का धर्म 'जड़ता' और पशु का धर्म 'पशुता' कहलाती है, ऐसे ही मनुष्य का धर्म 'मनुष्यता' है। वह मनुष्यता किस वस्तु पर अवलम्बित है। इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता कि मनुष्यता का आधार बुद्धि है। बुद्धि की दो शाखाएँ हैं, एक कल्पनाशक्ति, दूसरी विचारशक्ति। कल्पनाशक्ति संदेहात्मक है और विचारशक्ति निर्णयात्मक। बिना संदेह के किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता। अतएव अपनी कल्पनाशक्ति से संदेह उठा कर पुन: विचारशक्ति से उसका निर्णय करने में जो समर्थ है, वही मनुष्य है। संसार में सिवाय असभ्य और वन्य लोगों के और कौन ऐसा मनुष्य होगा, जिसको ऐसे धर्म की आवश्यकता न होगी, जो उसको मनुष्य बनाता है।

यह तो हुआ सामान्य धर्म, अब विशेष धर्म, इसी का दूसरा नाम कर्त्तव्य भी है। मनुष्य चाहे किसी दशा में हो, उसका कुछ-न-कुछ कर्त्तव्य होता है। यदि राजा राजधर्म का, प्रजा प्रजाधर्म का, स्वामी प्रभुधर्म का, सेवक सेवाधर्म का, पिता पितृधर्म का, पुत्र पुत्रधर्म का, पति पतिधर्म का, स्त्री स्त्रीधर्म का, गृहस्थ गृहस्थधर्म का, और यति यतिधर्म का साधन न करें तो संसार में न कोई मर्यादा रहे, न व्यवस्था। संसार में शान्ति और व्यवस्था तभी रह सकती है, जब प्रत्येक मनुष्य कर्त्तव्य के अनुरोध से अपने-अपने धर्म का पालन करें। अतएव इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं कि धर्म ही संसार की प्रतिष्ठा का कारण है। धर्म के इसी महत्त्व को लक्ष्य में रखकर 'तैतिरीयारण्यक' में यह कहा गया है—

धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा, लोके धर्मिमष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति
धर्मेण पापमपतुदन्ति धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम्।

अब हम कुछ प्रमाण भी जिनमें 'धर्म' शब्द प्रस्तुत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उद्धृत करते हैं। 'महाभारत' में धर्म का निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मेण विधृता: प्रजा:।
य:स्याद्धारणसंयुक्त: स धर्म इति निश्चय:।।

धात्वर्थ में भी इसी की पुष्टि होती है क्योंकि 'धृ' धातु धारण के अर्थ में है।

यो ध्रियते दधाति वा सद्धर्म:।

जो धारण किया हुआ प्रत्येक पदार्थ को धारण करता है, वह धर्म है। अग्नि में यदि उसका धर्म तेज़ न रहे फिर कोई उसे 'अग्नि' नहीं कहता, ऐसे ही मनुष्य यदि अपने धर्म का त्याग दे तो फिर केवल

आकृति और बनावट उसकी मनुष्यता की रक्षा नहीं कर सकती। उपनिषदों में जहाँ धर्मं चर, 'धर्मान्निप्रमदितव्यम्' इत्यादि वाक्य आते हैं, वहाँ भी इससे कर्त्तव्य या सदाचार का ही ग्रहण होता है। मनु ने धर्म के धृत्यादि जो दस लक्षण बतलाए हैं और जिनको धारण करके एक नास्तिक भी धर्मात्मा बन सकता है, उनमें मतवाद की गंध तक नहीं है। गीता में भी–

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठिनात्।

इत्यादि वाक्यों में 'धर्म' शब्द कर्त्तव्य का ही सूचक है, क्योंकि मनुष्य के लिए प्रत्येक दशा में अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही सर्वोपरि धर्म है। अपने कर्त्तव्य से उदासीन होकर दूसरों का अनुकरण करना चाहे वे अपने से श्रेष्ठ भी हों, अनधिकार चर्चा है। जब मनुष्य के आचार या कर्त्तव्य का नाम धर्म है तब यदि हमारे पूजनीय पूर्वजों ने उसको मनुष्य की प्रत्येक दशा से (चाहे वह आत्मिक हो या सामाजिक या वैयक्तिक) सम्बद्ध किया तो इससे उनका यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता था कि उन्होंने मतवाद के जाल में फंसाने के लिए धर्म की टट्टी खड़ी की। उन्होंने तो हमारे मनुष्यत्व की रक्षा के लिए ही प्रत्येक कार्य में इसका आयोजन किया था।

अब प्रश्न यह होता है कि जब धर्म मत से पृथक् है तो फिर मतवाद में या भ्रमात्मक विश्वासों में उसका पर्यवसान क्यों कर हुआ? इसका कारण चाहे कुछ हो पर इसमें संदेह नहीं कि हमारे दौर्भाग्य से इस समय हमारी धार्मिक अवस्था वह नहीं है जो उपनिषदों और दर्शनों के समय थी। उस समय सैद्धांतिक भेद भी हमारे धर्म को कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता था, पर आजकल आंशिक भेद को भी हमारा कोमल धर्म सहन नहीं कर सकता। उस समय हिन्दू धर्म इतना उदार था कि वह बौद्ध और जैन जैसे निरीश्वरवादी मतों को भी अपने क्रोड़ में स्थान दे सकता था, पर आजकल का हिन्दू धर्म साकारवादी और निराकारवादियों को मिलकर नहीं रहने देता। पहले का हिन्दूधर्म सदाचारी को धर्मात्मा और ज्ञानी को मोक्ष का अधिकारी (चाहे वह कोई हो) मानता था, पर आजकल का हिन्दूधर्म अपने लक्ष्य से ही च्युत होकर या तो मतमतांतर के शुष्क वाद-विवाद में या पुरानी लकीर को पीटने में अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है। संसार के और समस्त विषयों में हम विचारशक्ति का उपयोग कर सकते हैं, पर केवल धर्म ही एक ऐसा सुरक्षित विषय है कि जिसमें आँखें बंद करके दूसरों के पीछे चलना चाहिए। यदि इसकी कोई सीमा नियत होती, तब भी गनीमत थी पर अब इस दशा में जबकि इसकी अबाध सत्ता है, कोई भी विषय हमारे लिए ऐसा नहीं रह जाता, जिसमें हम स्वच्छन्द विचरण कर सकें। धर्म के नाम से जब तक हमारे समाज में जैसे-जैसे अनर्थ और अत्याचार हो रहे हैं, उनके कारण हमारे करोड़ों भाई और बहन मनुष्य होते हुए पशु-जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस बीसवीं सदी में जबकि अन्य देशवासी राष्ट्र ही नहीं किन्तु राष्टसंघ और साम्राज्य की स्थापना कर रहे हैं, भारतवर्ष यदि समाज संगठन के भी अयोग्य है तो उसका कारण भ्रमात्मक संस्कार की है।

हम जानते हैं कि जैसा धर्म का दुरुपयोग आजकल भारतवर्ष में हो रहा है, और ऐसा कहीं देखने में न आवेगा। परंतु अब प्रश्न यह है कि धर्म का प्रयोग अन्यथा किया जा रहा है, क्या इसलिए हम धर्म को ही छोड़ दें? यदि कोई मनुष्य अपनी मूर्खता से अग्नि में हाथ जला लेता है तो क्या उसे यह उपदेश करना ठीक होगा कि वह अग्नि से कभी कोई काम न ले या कि उसे अग्नि से काम लेने की तरकीब सिखाना ठीक होगा। इसका उत्तर प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य यही देगा कि दूसरी बात ही होनी चाहिए।

यद्यपि आधुनिक शिक्षा और समय के प्रभाव से आजकल धार्मिक क्षेत्र में भी असंतोष और हलचल मची हुई है और प्रत्येक धर्म के अग्रणी और शिक्षित पुरुष यह अनुभव करने लगे हैं कि अब इस बींसवी शताब्दी की जनता को इस प्रकाश के युग में केवल धर्म के नाम से रूढ़ि का दास नहीं बनाया जा सकता और न इस बढ़ते हुए हेतुवाद के प्रवाह को ही रोका जा सकता है। तथापि वे –

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्म संगिनाम्।

इस नीति का अनुसरण करते हुए धर्म के विषय में स्पष्टवादिता से काम नहीं ले सकते। इतना ही नहीं, बहुत से शिक्षित ऐसे भी मिलेंगे जो अपने समाज को प्रसन्न करने के लिए या उसका विश्वासभाजन बनने के लिए उसके भ्रमात्मक विश्वासों पर तर्क और विज्ञान की कलई चढ़ाने लगते हैं। जिस देश में नैतिक बल की दुर्दशा हो और जहाँ मान के भूखे शिक्षित लोग अशिक्षितों से मान–भिक्षा की याचना करें, वहाँ यदि धर्म का ऐसा दुरुपयोग हो रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु प्रश्न ये हैं, जब तक धर्म के सूर्य में अन्धविश्वास का यह ग्रहण लगा हुआ है, क्या हम अपने उद्देश्य और लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं? हमारे देश के नेता राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए तो फड़फड़ा रहे हैं, पर यह धार्मिक परतंत्रता जो हमें खुली हवा में साँस भी नहीं लेने देती, उनकी दृष्टि में ज़रा भी नहीं खटकती। क्या इसीलिए कि यह फाँसी हमने अपने आप लगाई है, इसकी मौत मीठी है?

हमारा वक्तव्य केवल यह है कि यदि धर्म हमारे स्वभाव या कर्त्तव्य का बोधक है, जैसा कि हम अपना अभिप्राय प्रकट कर चुके हैं, तब तो वह हमसे और हम उससे किसी दशा में भी पृथक् नहीं हो सकते। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ की सत्ता उसके धर्म पर ही अवलम्बित होती है और ऐसे धर्म की आवश्यकता न केवल समाज को है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को है। जहाँ राष्ट्र या समाज अपने उस स्वाभाविक धर्म का पालन करें, वहाँ कोई व्यक्ति भी उसकी उपेक्षा न करे। इस दशा में धर्म की व्यापकता या अबाधसत्ता किसी को अवांछनीय नहीं हो सकती और यदि यह हमारा भ्रम है और वास्तव में धर्म का अभिधेय, जैसा कि आजकल माना जा रहा है, मतमतांतर के काल्पनिक सिद्धान्त और भ्रमात्मक विश्वास है, तो हम नि:सकोच अपने देशवासियों से यह प्रार्थना करेंगे कि जिस प्रकार पश्चिमवासियों ने धर्म की सीमा नियत करके अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्रों से उसका प्रतिबंध हटा दिया है, ऐसा ही हमको भी करना चाहिए अन्यथा ये भ्रमात्मक विश्वास अपने साथ हमको भी ले डूबेंगे।

आप डुबन्ते बामना ले डूबे जजमान।

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

अधिकांश पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार राष्ट्रवाद एक ऐसा राजनीतिक सिद्धान्त है जो राष्ट्र को राजनीतिक संगठन की मुख्य ईकाई मानता है और जिसका मुख्य लक्ष्य विशिष्ट राष्ट्रीय जनसमूह पर अवलम्बित स्वाधीन राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) का गठन करना है। पिछली दो शताब्दियों के इतिहास से यह स्पष्ट है कि इस मतवाद को मानने वाले अपने देश में तो दूसरे देशों के शासन का विरोध करते हैं किन्तु शीघ्र ही अपनी राजनीतिक लालसा के कारण प्रायः साम्राज्यवादी का बाना धारण कर लेते हैं। क्या इस मान्यता को भारत पर आरोपित किया जा सकता है? मेरे मतानुसार ऐसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि हमारे पारम्परिक राष्ट्रचिन्तन में राजनीति की भूमिका गौण है, उसमें प्रधानता है व्यापक अर्थ में प्रयुक्त धर्म अथवा संस्कृति की, अतः उसकी परिणति हिंसक आक्रामकता में न हो कर उदार, सहिष्णु वैश्विकता में होती है।

अंग्रेज सरकार के विरुद्ध क्रान्ति के अभियोग में एक वर्ष तक विचाराधीन कैदी के रूप में कारागार में रहने के बाद जब भी अरविन्द मुक्त हुए थे तो उन्होंने उत्तरपाड़ा के अपने विख्यात भाषण में कहा था, 'हमारा सनातन धर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। जब सनातन धर्म की हानि होती है तब इस राष्ट्र की अवनति होती हे, और सनातन धर्म का विनाश यदि संभव होता, तो सनातन धर्म के साथ ही इस राष्ट्र का भी विनाश हो गया होता।'' यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि सनातन धर्म का अर्थ है— चिरपुरातन होते हुए भी नित्य नूतन धर्म, स्वरूप में अपरिवर्तित रहते हुए भी, युगीन प्रयोजनों के अनुरूप नव-नव रूप धारण करने में समर्थ धर्म।

रूप और स्वरूप का मौलिक अन्तर समझना चाहिए। रूप बाहरी होता है अतः वह बदला जा सकता है लेकिन स्वरूप आभ्यन्तर होता है वह बदला नहीं जा सकता। उसके बदलने पर वस्तु ही बदल जाती है। बहुरूपिया एक दिन में दस बार रूप बदल सकता है लेकिन वह अपना स्वरूप नहीं बदल सकता। इस बात को बहुत अच्छे ढंग से भक्ति की परिभाषा के माध्यम से नारदीय भक्ति-सूत्र में समझाया गया है। भक्ति का लक्षण देते हुए उसमें कहा गया है, ***सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपाच।***

वह भक्ति निश्चय ही परमात्मा के प्रति प्रेम रूपा है। अगर भक्ति का रूपपरक लक्षण केवल परम प्रेम ही होता तो भक्ति की पहचान पूरी नहीं होती क्योंकि परम प्रेम तो पति-पत्नी में या अन्यों में भी हो सकता है। इसीलिए भक्ति की पहचान को भ्रान्तिरहित करने के लिए ही जोड़ा गया कि वह अमृतस्वरूपा है। भक्ति अमृतत्व के प्रति निवेदित है, स्वयं अमृता है और भक्तों को भी

अमृतत्व प्रदान करने में समर्थ है। भगवद्‌भक्ति का रूप है परम प्रेम और स्वरूप है अमृतत्व है।

अत: मैं समझता हूँ कि अपने राष्ट्रवाद को परिभाषित करने के पहले हमें अपने पारम्परिक स्वरूप को हृदयंगम करना चाहिए जो परिस्थितियों के दबाव में रूपत: बाहर से तो बदलता रहा है, किन्तु भीतर से अपरिवर्तित रहा है। हम परम्परा के आधारभूत चिन्तन-मनन और जीवन में उसके प्रतिफलन को समझने की चेष्टा करें। बहुत ही संक्षेप में मैं कुछ प्रमुख मान्यताओं की चर्चा करने जा रहा हूँ।

भारतीय ऋषियों ने परम तत्त्व का स्वरूप निर्धारित किया है सच्चिदानन्द अर्थात् वह सत् स्वरूप है, सदा रहा है, आज भी, आगे भी रहेगा, उसका अभाव कभी नहीं हो सकता, चित् स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, वह समस्त ज्ञानों का स्रोत है, नश्वर, सुख-दु:ख से परे शूद्ध आनन्दमय है। इसका अर्थ यह भी है कि जो सत् है वही चित् है, वही आनन्द है। यही तत्त्व सृष्टि रचना करते समय अपने को बहु बनाता है, ***''एकोऽहं बहुस्याम्''***।

यह सृष्टि अपनी प्रकृति से ही त्रिगुणात्मिका और द्वन्द्वमयी है अर्थात् सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण मिश्रित है एवं जड़-चेतन जन्म—मरण, गुण—दोष, लाभ—हानि द्वण्द्वों से युक्त है। मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है क्योंकि और सब प्राणी पशु-पक्षी, मत्स्य आदि प्रकृति के सर्वथा आधीन है, केवल मनुष्य ही अपने कर्मों द्वारा ही प्रकृति का अतिक्रमण कर सकता है। यह अतिक्रमण दोनों ओर हो सकता है, अच्छाई की ओर भी और बुराई की ओर भी।

मनुष्य अच्छाई की ओर बढ़े तभी उसका अभ्युदय होगा, बुराई की ओर जाने से तो वह पशु ये भी अधम हो जाएगा, क्योंकि सामान्यत: कर्म का फल हमें भोगना ही होता है। कर्मफल भोग का यह सिद्धात भी हमारी आधारभूत मान्यताओं में एक है। मनुष्य को अच्छाई की ओर ले जाने के लिए ही धर्म और संस्कृति का विधान किया गया। धर्म की परिभाषा है ***यतोऽभ्युदानि:श्रेयस् सिद्धि: स धर्म:*** अर्थात् धर्म वह है जिससे भौतिक अभ्युदय और मोक्ष की प्राप्ति हो। धर्म व्यक्ति का भी होता है समष्टि का भी। महाभारत में कहा गया है कि धारण करने की शक्ति के कारण धर्म धर्म होता है। धर्म वही है कि जो प्रजा का धारण करे। अत: निश्चित सिद्धान्त यही है कि जो धारण शक्ति से संयुक्त है वही धर्म है—

धारणाद् धर्म इत्याहु: धर्मेण विधृता: प्रजा:।
य: स्याद् धारणसंयुक्त: स धर्म इति निश्चय:।।

प्रजा का धारण करे अर्थात् प्रजा को पतित होने से बचाये, प्रजा को सन्मार्ग पर ले चले। उस आधारभूत धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है जो सबके लिए, सब कालों में पालनीय है। मनुस्मृति में यह गौरव सत्य को दिया गया है। सत्य भाषण की मर्यादाओं को निर्धारित करते हुए कहा गया है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्म: सनातन:।। (मनु— ४।१३८)

अर्थात् सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए, प्रिय मिथ्या भी नहीं बोलना चाहिए। सत्य को प्रिय बना कर बोलने की साधना सनातन धर्म है।

इसी तरह महाभारत में कहा गया है कि समस्त प्राणियों के प्रति मन, वाणी और कर्म से द्रोह का भाव न रखना, सब के प्रति अनुग्रह, सब के प्रति उदारता (दानभाव) यही सज्जनों का सनातन धर्म है–

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।

मनु ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय निग्रह को भी सभी वर्णो का सामासिक अर्थात् सामूहिक धर्म कहा है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिक धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।।

इसके अलावा युग धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, आपद्धर्म, आदि की व्यवस्था भी की गयी है। समाज में विभिन्न भूमिकाओं के सम्यक् निर्वाह के लिए पति-पत्नी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा आदि के धर्म भी निर्दिष्ट किये गये हैं। बदली हुई परिस्थियों में धर्म के रूप में भी बदलाव आता है, इस सत्य को स्वीकार करके ही मनु ने कहा है–

अन्ये कृतयुगे धर्मातायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नतॄणां युगह्रासानुरूपतः।। (मनु–२।८७)

अर्थात् मनुष्यों के लिए सत्ययुग के धर्म अन्य हैं जबकि त्रेता, द्वापर, कलियुग के धर्म युगह्रास के अनुरूप बदलते जाते हैं। मूल बात यही है कि स्वरूप का रक्षण करते हुए हम अपने आपको युगीन परिस्थितियों के अनुरूप बदलते रह सकते हैं।

यहीं कुछ चर्चा संस्कृति की भी कर ली जाए। संस्कृति अर्थात् सम्यक् कृति। इससे यह ध्वनि निकलती है कि जो कृति को सम्यक् रूप से सुधार दे वह संस्कृति है। कुछ लोग कहते हैं कि संस्कृति शब्द ''कल्चर'' का अनुवाद है। यह ठीक नहीं है। यजुर्वेद में बड़े गौरव के साथ इसका प्रयोग करते हुए कहा गया है, ''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'' अर्थात् हमारी यह प्रथमा संस्कृति, श्रेष्ठ संस्कृति विश्ववरणीय है।

यह ठीक है कि प्राचीन साहित्य में संस्कृति के समशील शब्द संस्कार का प्रयोग अधिक किया गया है, किन्तु संस्कृति शब्द नवनिर्मित है, यह कहना गलत है। हम जो कुछ करते हैं, जिस प्रकार का वैयक्तिक, पारिवारिक या सामाजिक जीवन जीते हैं, उसको निरन्तर सुधारते रहने की प्रक्रिया ही संस्कृति है। जीव को सुसंस्कृत करते रहने के तीन साधन हमारे पूर्वजों ने बताये हैं, गुणधान, (गुणो को अर्जित करना), दोषापनयन (दोषों को दूर करना) और हीनांगपूर्ति अर्थात जो आवश्यक अवयव (सहायता साधन) अपने पास न हों उन्हें अन्यों से प्राप्त करना। हम दूसरों से

अच्छे विचार या साधन लेने के लिए सदा प्रस्तुत रहे हैं। ऋग्वेद की ही उक्ति है, ''आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः'' अर्थात् सब दिशाओं से मिले शुभ ज्ञान। इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्वीकार किया जाने वाला विचार या उपकरण हमारे लिए शुभ है कि नहीं, हमारी संस्कृति के अनुकूल है या नहीं।

प्रश्न उठता है कि गुण और दोष के निर्धारण का आधार क्या होना चाहिए? सीधा उत्तर है कि हमारी परम्परा ने सच्चिदानन्द को सर्वोपरि तत्त्व माना है। अतः जो कुछ उसके अनुकूल है वह गुण और जो कुछ उसके प्रतिकूल है वह दोष है। उदाहरणार्थ गीता के सोलहवें अध्याय में वर्णित दैवी सम्पदा को अर्जनीय गुण समूह एवं आसुरी सम्पदा को त्याज्य दोष समूह कहा जा सकता है। हमें निरन्तर अपना, अपने समाज का निरीक्षण करते रहना चाहिए और गुणों का अर्जन तथा दोषों का त्याग करते रहना चाहिए तभी हम सुसंस्कृत होंगे और समाज को सुसंस्कृत बना सकेंगे। यही मानदंड संस्कृति के लिए भी सच है। सृष्टि में समरसता, सद्भाव बनाये रखनेवाली ज्ञान और आनन्द की वृद्धि करनेवाली व्यवस्था संस्कृति है एवं उसकी विरोधी व्यवस्था विकृति है।

अपनी संस्कृति की एक आधारभूत विशेषता की ओर आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। सभी जानते हैं कि अपने-अपने उपास्य की उत्कृष्टता सिद्ध करने के हठाग्रह के कारण धार्मिक विद्वेष उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप धार्मिक संघर्ष होते रहे हैं। भारतीय संस्कृति ने इस विकृति के निराकरण के लिए एक अद्भुत स्थापना की है। ऋग्वेद में कहा गया है कि, ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'' अर्थात् परमसत्ता एक ही है जिसे विद्वान विविध नामों से पुकारते हैं। उपास्यों के नाम, रूप, लीला, धाम आदि में विभिन्नता हो सकती है किन्तु यदि वे परम सत्ता की ही अभिव्यक्ति है, सच्चिदानन्द स्वरूप ही है तो इन सब विभेदों के बावजूद वे मूलतः एक ही है। अतः इनके लिए विवाद करना असंगत है।

इस मान्यता के कारण भारत में बड़ी हद तक साम्प्रदायिक समरसता बनी रही। सम्राट् हर्षवर्धन, शिव, सूर्य और बुद्ध तीनों की उपासना करते थे। एक ही परिवार के भिन्न-भिन्न व्यक्ति इष्टदेवों की पूजा करते हुए प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहते हैं। अपने इष्ट देव को बड़ा साबित करने के लिए झगड़ा नही करते। याद आ रहा है इस भाव को मूर्तरूप देने वाला श्री हनुमन्नाष्टक का यह श्लोक —

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

अर्थात् शैव जिनकी उपासना शिवरूप से करते हैं, वेदान्तिक ब्रह्म रूप से, बौद्ध बुद्ध रूप से और प्रमाण कुशल नैयायिक जिन्हें कर्ता मानते हैं, जैन जिन्हें अर्हन और मीमांसक कर्म बतलाते

हैं, वे त्रैलोक्याधिपति भगवान हमको वांछित फल प्रदान करें। इसी भाव की प्रतिध्वनि जैनाचार्य की इस उक्ति में मिलती है—

भवबीजांकुरजनना रागाद्या: क्षयमुपगता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।

अर्थात् पुनर्जन्म के बीजांकुर उत्पन्न करने वाले रागादि दोष जिसके नष्ट हो चुके हैं, उसे मेरा नमस्कार है, वह चाहे ब्रह्मा हो या विष्णु, शिव हो या जिन! यह उदार समंजसता सचमुच वन्दनीय है। इसी स्थापना की एक और कल्याणकारिणी उपलब्धि यह है कि हमारी संस्कृति यह स्वीकार करती है कि परमात्मा तक जाने के मार्ग अनेक हैं क्योंकि लोगों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न हैं, क्षमताएँ भिन्न-भिन्न हैं। अत: सब एक ही पथ पर कैसे चल सकते हैं? शिवमहिम्न स्तोत्र की इन पंक्तियों को सुनें—

रुचीनां वैचित्र्याद्ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात् अपनी भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार सीधे या टेढ़े मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलते हुए सभी साधक हे प्रभु, तुम तक उस प्रकार पहुँचेंगे जिस प्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम किसी भी दिशा की ओर बहने वाली नदियाँ समुद्र तक पहुँचती हैं। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की विश्व धर्म सभा में इन पक्तियों को सुनाकर श्रोताओं को भाव विभोर कर दिया था। इस सत्य की अनुगूंज भारतीय साधना जगत् में बार-बार होती रही है। हिन्दी की एक पंक्ति मुझे याद आ रही है, '' बीथी भगवत मिलन की निहचै एक न होय'' अर्थात् यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान से मिलने का रास्ता एक ही नहीं है। श्री रामकृष्ण परमहंसदेव कहा करते थे, ''जतो मत ततो पथ'' जितने मत हैं उतने ही पथ हैं भगवान तक पहुंचने के। विनोबा भावे ने इसे भारतीय संस्कृति का भेदक लक्षण घोषित करते हुए इसको ''भी वाद'' की संज्ञा दी है। इसका अर्थ हुआ कि यदि हम सब श्रद्धापूर्वक चल रहे हैं तो भगवान तक मेरा रास्ता भी पहुँचेगा और तुम्हारा तथा उसका रास्ता भी पहुँचेगा। यह ''भी'' वाद यदि सभी धर्मावलम्बियों द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो धार्मिक संघर्ष का मूलोच्छेद हो जाए। पर अभी इसकी संभावना बहुत कम है क्योंकि विनोबा भावे के अनुसार यहूदी, ईसाई और इस्लाम ''ही'' वादी धर्म हैं।

उनमें से प्रत्येक यह मानता है कि उसका रास्ता ही सही रास्ता है। और दूसरों के रास्ते गलत हैं। यह भी यहाँ जोड़ दूँ कि बाबा विनोबा के अनुसार मार्क्सवादी भी ''ही'' वादी ही हैं। वे भी सब पर अपना सिद्धान्त थोपने के हठाग्रही हैं।

भारतीय संस्कृति की एक और आधारभूत विशेषता है जीवन को समग्रता में ग्रहण करना। भारतीय संस्कृति खंड दृष्टियों से परिचलित नहीं होती। खंड दृष्टियों में मनुष्य के किसी एक विशेष पक्ष पर अत्यधिक बल दिया जाता है, जिससे उसके अन्य पक्ष उपेक्षित रह जाते हैं। अपनी समग्र

दृष्टि के कारण भारतीय संस्कृति मानव जीवन की समस्त उपलब्धियों को चार पुरुषार्थो में समेट लेती है। आजकल पुरुषार्थ शब्द का प्रयोग साहसपूर्ण कठिन परिश्रम के लिए भी होने लगा है। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ है ''पुरुषै: अर्थ्यते इति'' अर्थात् मनुष्य जिसको चाहता है। मानव-जीवन पर समग्र रूप से विचार कर निर्धारित किया गया है कि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को चाहता है। बाहर की दृष्टि से भीतर की यात्रा के विचार किया जाए तो धर्म का स्थान काम के बाद आता है। किसी विशेष प्रयोजन से ऋषियों ने धर्म को सब से पहले रखा है।

अर्थ्यते इति अर्थ:... अर्थात् जिसको चाहा जाता है वह! अर्थ का मतलब साधारणत: समझा जाता है धन, दौलत, किन्तु वास्तव में समस्त स्थूल भौतिक उपलब्धियों को 'अर्थ' पुरुषार्थ के अन्तर्गत ग्रहण करना चाहिए। इस बात पर ध्यान दीजिए कि अर्थ हमारे बाहर रहता है। कोई सिर पटक कर मर जाए तो भी अर्थ को अपने भीतर नहीं ला सकता। हमारा सारा रुपया पैसा, घर जमीन, कल कारखाने आदि-आदि हमसे बाहर हैं। मजा यह है कि इन वस्तुओं को हम ही अपना मानते हैं, ये वस्तुएँ हमें पहचानती तक नहीं। यह भी याद रखना चाहिए अर्थ साधन मात्र है, वह साध्य नहीं हो सकता। यह भी सही है कि अर्थ जीवन यात्रा के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय हैं अत: उसके महत्त्व को स्वीकार कर उसे पुरुषार्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है।

अर्थ की तुलना में काम आन्तरिक है। काम का अर्थ स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध ही नहीं है। काम का व्यापक अर्थ है सौन्दर्य को समाहित करने वाली कामना। इसीलिए साहित्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य तथा अन्य सब कलाओं का समाहार काम पुरुषार्थ के अन्तर्गत ही होता है। काम का अवस्थान हमारे मन में है और उसका लक्ष्य है सृष्टि को अधिक सुन्दर, अधिक रमणीय बनाकर उसका उपभोग करना। धर्म पुरुषार्थ का अवस्थान हमारी बुद्धि में है, सत् को असत् से अलग करनेवाले हमारे विवेक में है। वह असत् को त्याग कर सत् को ग्रहण करने की हमें प्रेरणा देता है। उसे अर्थ और काम के पहले गिनाने का अभिप्राय यही है कि हम सदुपायों से अर्थ और काम की सिद्धि करें, असत् उपायों से नहीं। मोक्ष हमारी आत्मा का सहज स्वरूप है। अज्ञान के आवरण को नष्ट कर हम उसका अपरोक्ष अनुभव कर सकते हैं।

इन चारों पुरुषार्थो की सम्यक् सिद्धि के लिए ही मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। सामान्य नियम तो क्रमश: अगले आश्रम में जाने का है, किन्तु यह भी स्वीकार किया गया है कि जिस दिन सच्चा वैराग्य मन में उदित हो उसी दिन संन्यास ग्रहण कर लिया जा सकता है। इसी तरह गुण और कर्म के आधार पर ऋषियों ने मानव समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त किया था। यह दुर्भाग्य ही है कि बाद में इस व्यवस्था को विकृत कर जन्म पर आधरित मान लिया गया जिससे अनेक प्रकार के अन्यायों की सृष्टि हुई। यह सन्तोष की बात है कि इन अन्यायों का निराकरण अब संविधान द्वारा कर दिया गया है।

समग्र जीवन के मंगल का विधान करनेवाली हमारी सांस्कृतिक चेतना ने जिस भारतीय समाज और राष्ट्र का निर्माण किया उनमें राजनीति की भूमिका को महत्त्वपूर्ण तो माना गया है, किन्तु उसे सर्वोपरि नहीं माना गया है। सर्वोपरि स्थान धर्म को ही दिया गया क्योंकि वही अर्थ और काम का सम्यक् सिद्धि के द्वारा अभ्युदय का और वैराग्य से पुष्ट हो कर मोक्ष का साधन बनता है।

धर्माधिष्ठित राजनीति का ही हमारे देश में सम्मान था। भारतीय चेतना ने आदर्श शासक के रूप में श्रीराम को ही स्वीकार किया है जिनकी प्रशस्ति में कहा गया है, ''रामो विग्रहवान् धर्मः'' राम तो मूर्तिमान धर्म ही है। राज्याभिषेक के बाद जब राजा अपने को अदंड्य घोषित करता था तब पुरोहित कहता था, नहीं तुम भी धर्म दंड्य (धर्म के द्वारा दंडनीय) हो। धर्म रहित राजनीति को निन्दनीय माना जाता था। भर्तृहरि ने तो उसकी तुलना वेश्या से करते हुए लिखा है–

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।

राजनीति कभी सत्यमयी, कभी मिथ्यात्वी, कभी कठोर, कभी प्रियभाषिणी, कभी हिंसामयी, कभी दयालू, कभी लोभी, कभी उदार, कभी अत्यन्त खर्चीली, कभी अत्यधिक अर्जनशील होती है। सचमुच वेश्या की ही तरह वह अनेकरूपा है। राजनीति वस्तुतः कल्याणकरिणी तभी होती है जब वह सच्चे राजधर्म पर आधारित होती है, जिसका एक प्रधान लक्षण यह है कि राजा पार्थिव व्रत का निर्वाह करे अर्थात् उसी प्रकार बिना किसी भेदभाव के सारी प्रजा का समानभाव से पालन करे जिस प्रकार पृथ्वी सब प्राणियों को समान भाव से धारण करती है–

यथा सर्वाणि भूतानि, धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि, बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्।।

इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय धर्म व राज्य को मजहबी राज्य या 'थियोक्रैटिक स्टेट' नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें जाति, भाषा, उपासना-पद्धति आदि के आधार पर जनता में भेद-भाव नहीं किया जाता था।

वेदों में राष्ट्र शब्द अनेक बार आया है। यह ठीक है कि राष्ट्र शब्द का प्रयोग कभी-कभी राज्य और प्रजावर्ग के लिए भी किया गया है, किन्तु मूलतः उसका प्रयोग देशवाचक है जिसमें एक विशिष्ट विचारधारा (संस्कृति) को मानने वाला वर्धिष्णु समाज रहता है। उस देश की धरती से उस समाज के व्यक्तियों का सम्बन्ध माता-पुत्र का है। तभी वैदिक ऋषि कहता है, ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''। वैदिक ऋषि को ज्ञात है कि यह धरती माता अनेक भाषाओं को बोलने वाले, अनेक धर्मों का अनुसरण करने वाले जनों को धारण करती है, ''जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं'', नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्''।

इसलिए उसका आदेश है कि देश के सभी निवासी कदम से कदम मिला कर चलें, अपनी विशेषताओं के बावजूद एकता का भाव रखें। परस्पर विरोध का त्याग कर एक सी वाणी बोलें, सबके मन और संकल्प एक जैसे हों, ***संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्।***

इस समाज के परिवारों के आन्तरिक सौमनस्य की कामना ऋषि ने अथर्ववेद के संज्ञान सूक्त में की है। यजुर्वेद के इस मंत्र को सुनाये बिना नहीं रह सकता क्योंकि सहृदयों ने इसे वैदिक राष्ट्रगीत की संज्ञा दी है–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्।

अर्थात् हे प्रभु, हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेजव्रतधारी विद्वान ब्राह्मण हों, शूर, धनुर्धर शत्रु–विनाशी महारथी क्षत्रिय हों, दुधारू गायें हो, भारवाही पुष्ट बैल हों, तीव्रगामी अश्व हों, सुन्दरी गुणवती नारियाँ हों, विजयशील रथी सभ्य युवक हों, इस यजनशील पुरुष के वीरपुत्र उत्पन्न हों, समय–समय पर वर्षा हो, हमारी खेती खूब फले–फूले, पके, जिससे हमारे राष्ट्र का योगक्षेम चलता रहे।

विद्या, शक्ति, समृद्धि से युक्त जिस तेजस्वी राष्ट्र की भावना इस वैदिक मंत्र में की गयी है, कालान्तर में वही भारतवर्ष के नाम से विख्यात हुआ। भारत नाम क्यों पड़ा, इस पर मतभेद है। ब्रह्मांडपुराण के अनुसार प्रजा का भरणपोषण करने के कारण मनु को भरत कहा जाने लगा। कुछ विद्वानों के अनुसार दुष्यन्त के पुत्र के नाम पर देश का नाम भारत हुआ। जो हो, विष्णु पुराण में इसकी सीमा का स्पष्ट निर्देश करते हुए कहा गया है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में जो देश है, उसका नाम है भारतवर्ष, जिसकी सन्तति भारती के नाम से प्रसिद्ध है अथवा जहाँ भरत की सन्तति का वास है। विष्णुपुराण में भारत के पर्वतों, प्रदेशों, नदियों, निवासियों के वर्णन के बाद बताया गया है कि भारत कर्मभूमि है जबकि अन्य सभी भूमियाँ भोगभूमि हैं। अतः जम्बू द्वीप में भारत सर्वश्रेष्ठ देश है। भारत की प्रशंसा में गीत गाते हुए देवगण भी कहते है कि वे धन्य है, जिनका जन्म भारत में हुआ है क्योंकि यहाँ के निवासी उत्तम सकाम कर्म करते हुए स्वर्ग की ओर ज्ञान या भक्ति से युक्त निष्काम कर्म द्वारा मोक्ष की उपलब्धि कर सकते हैं, अतः वे देवताओं से भी श्रेष्ठ है! अद्‌भुत है हमारे पूर्वजों की साधना की

प्रशंसा में कहा गया यह श्लोक –

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

लक्ष्य करने की बात यह है कि भारत की यह प्रशंसा उसकी साधनामयी संस्कृति के लिए की गयी है, राजनीतिक उपलब्धियों के लिए नहीं।

यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में मनु, रघु, श्रीराम, युधिष्ठिर, अशोक, विक्रमादित्य आदि कुछ ही ऐसे चक्रवर्ती राजा थे जिन्होंने पूरे भारतवर्ष पर शासन किया था। अन्यथा भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग, स्वाधीन राज्य थे। हमारा इतिहास साक्षी है कि राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न राज्यों में विभक्त होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से पूरा भारतवर्ष एक देश माना जाता था। देश के किसी भी कोने में बैठ कर पुण्य कार्य करने वाला व्यक्ति जल को शुद्ध करने के लिए देश के विभिन्न भागों में बहने वाली सात पवित्र नदियों का आह्वान करता था, जो परम्परा आज तक चली आ रही है—

गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

इसी तरह सात मोक्षदायिका पुरियाँ, द्वादश ज्योतिर्लिंग, बावन शक्तिपीठ, चार धाम, चार महाकुंभ क्षेत्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे ग्रन्थ आदि हमारे देश की एकता के महत्त्वपूर्ण संघटक हैं। यदि हमारे देश की एकता का मुख्य आधार संस्कृति है तो हमारे देश के राष्ट्रवाद को स्वाभाविक रूप से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहना चाहिए।

एक बात और है। हमारे देश के अखंड मंडलाकार चिन्तन के अनुरूप ही हमारी व्याप्ति की धारणा राष्ट्र से आगे बढ़कर विश्वोन्मुखी या विश्वनाथोन्मुखी हो जाती है। विलक्षण है यह श्लोक—

माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च, स्वदेशो भुवनत्रयम्।।

भक्त का उद्‌गार है भगवती पार्वती या पर्वतों को धारण करने वाली यह धरती मेरी माता है पिता है देवाधिदेव परमेश्वर, शिव अर्थात् कल्याण के साधक ही मेरे आत्मीय स्वजन हैं और स्वदेश तीनों भुवन हैं। इसी सांस्कृतिक चेतना के कारण भारतवर्ष कभी दूसरे देशों पर आधिपत्य जमाने की लालसा से ग्रस्त नहीं हुआ, क्योंकि हमारी राष्ट्रीयता की परिणति ''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'', वसुधैव कुटुम्बकम्, स्वदेशोभुवनत्रयम्'' के अनुरूप वैश्विकता में होती रही है। राजनीतिक राष्ट्रवाद की विकृति साम्राज्यवाद के रूप में कितनी आसानी से हो जाती है इसे पश्चिमी देशों या पश्चिमी मतवादों से आक्रान्त देशों के इतिहास के अनुशीलन से समझा जा सकता है।

यह ठीक है कि राजनीति को कम महत्त्व देने का दंड भी हम लोगों को भोगना पड़ा है। जब विदेशी शक्तियाँ सीमावर्ती राज्यों पर आक्रमण करती थी तो देशभर के सभी राज्य मिलकर उनका प्रतिरोध नहीं करते थे। फलत: एक-एक करके वे राज्य विपन्न होते रहे और हमें पराधीनता का अभिशाप भोगना पड़ा। अब हम इस ओर भी सावधान रह कर अपने को राजनीतिक दृष्टि से भी अजेय बनायें, यही अभीष्ट है।

जो हो, अपने विचारक्रम को ऐतिहासिक दृष्टि से आगे बढ़ने पर यह लक्षित किया जा सकता है कि जब तुर्क आये, पठान आये, मुगल आये और केन्द्रीय राज्य क्षमता छिन गयी, तब भी हमारी संस्कृति ने ही सारे देश को एक मानने की दृष्टि को अक्षुण्ण रखा। मध्यकाल में हुए हेमाद्रिपंडित ने अपने संकल्प में देश के मान्य पर्वतों, वनों, नदियों, पुरियों, प्रदेशों का उल्लेख कर पूरे भारतवर्ष का बोध जाग्रत रखा। आज भी श्रावणी आदि पर्वों का पालन करते समय इस विस्तृत संकल्प का पाठ किया जाता है। इस बात पर भी ध्यान जाना चाहिए कि राजनीतिक पराजय के बावजूद हमारी संस्कृति ने किस प्रकार अन्याय का प्रतिरोध करने की प्रेरणा दी, समागत इस्लामी संस्कृति से कैसे सेतु बनायें, किस प्रकार उसे एक सीमा तक प्रभावित किया, कैसे उसने ग्रहणीय अंश को स्वीकारा।

यह सांस्कृतिक सेतु मुख्यत: योगियों, भक्तों, संतों, सूफियों ने तैयार किया। मध्यकाल में दक्षिण भारत में भक्ति साधना का नवोन्मेष हुआ जिसे उत्तर भारत में प्रवाहित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य आकाशधर्मी गुरु रामानन्द ने किया। भक्ति सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने घोषणा की ''जाति पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सौ हरि का होई'' और इस पर अमल भी किया। उनके शिष्य में कबीर दास भी थे जो मुस्लिम जुलाहा कुल में पैदा हुए थे। कबीर ने हिन्दु मुसलमान दोनों को फटकारते हुए पूछा— ''हुई जगदीस कहां ते आये, कहु कौने भरमाया'' और दृढ़तापूर्वक घोषणा की—

हमरै राम रहीम, करीमा कैसो अलह राम सति सोई।
बिसमिल मेटि बिंसभर एकै और न दूजा कोई।।

यह विचार ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'' की भावना के अनुरूप ही है, किन्तु उस संघर्ष काल में इसे घोषित करना सचमुच साहस का काम था। कबीर ने योगियों सूफियों से भी सत्संग किया था, किन्तु उनका ऐतिहासिक कार्य निर्गुण भक्ति का व्यापक प्रचार करना ही था। उनके शिष्यों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे। दादू, रज्जब, बरवना, वाजिद, गरीबदास आदि मुस्लिम भक्तों ने भारतीय भक्ति साधना और सूफी साधना को एक हद तक समन्वित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

गुरुनानक देव ने भी निर्गुण भक्ति पर बल दिया, हिन्दू-मुसलमान का भेद अस्वीकार कर दोनों को अपना शिष्य बनाया। उनमें भक्ति के साथ-साथ शक्ति की भी ज्योति चमकती थी। बाबर

के अत्याचारों के क्षुब्ध हो कर उन्होंने जिस तरह उसे फटकारा और घोषणा की, ''हिन्दुस्तान संभालसि बोला'' वह सचमुच अत्यन्त प्रेरणादायक तेजस्विता का प्रमाण है। सचमुच मर्द के चेले उठे और इस परम्परा का निर्वाह करते हुए गुरु अर्जुनदेव ने गुरु ग्रन्थ साहब की पवित्रता की रक्षा के लिए वस्तुत: उपासना पद्धति की भिन्नता के अधिकार की रक्षा के लिए अपनी कुर्बानी दी और गुरु गोबिन्द सिंह ने उसी आदर्श को रूपायित करने के लिए जुझारू खालसा पंथ की स्थापना की। सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता को किस प्रकार सुदृढ़ करती है इसका उज्जवल निदर्शन है सिक्खों का बलिदानी इतिहास। दक्षिण-पश्चिम भारतवर्ष में समर्थ स्वामी रामदास की प्रेरणा से ही छत्रपति शिवाजी का प्रादुर्भाव हुआ था।

इसी के साथ-साथ सद्‌भावपूर्वक सेतु बनाने का कार्य भी चलता रहा। रसखान उच्चवर्ग के पठान थे। पठानों और मुगलों के संघर्ष से दिल्ली नगर को श्मशान सदृश बनता देख कर उन्हें वैराग्य जागा। उन्होंने ''छिनहिं'' बादशाह वंश की ठसक छोड़ कर भक्तों से सत्संग शुरू किया। श्रीकृष्ण के रूप पर, उनकी मनोहर लीलाओं पर वे रीझ गये। उन्होंने लिखा है, प्रेम देव की छबिहिं लिख भये मियां रसखान''। कैसी अपूर्व रसमयी कविताएँ हैं उनकी, श्रीकृष्ण भक्त की मनोकामना मूर्त हो उठी है उनके शब्दों में—

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूंपुर को तजि डारौं।
आठहूँ सिद्धि नवों निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
इन आंखिन सों रसखान कबों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं। ?

बादशाह वंश का प्रतिनिधि कह रहा है कि मेरी ओर से सोने के करोड़ों भवन वृन्दावन के करील के कुंजों के ऊपर न्यौछावर।

बादशाह वंश के एक और प्रतिनिधि थे खानखाना अब्दुर्रहीम..... अकबर के फुफेरे भाई। अपनी दोहावली के मंगलाचरण के रूप में उन्होंने भगवती गंगा की ऐसी स्तुति की है कि उसे पढ़ कर सहृदय व्यक्ति रोमांचित हो उठता है। वे कहते हैं, हे सुरसरि, हे गंगा मैया तुम सर्वसमर्थ हो। चाहे तो किसी को विष्णु बना दो, चाहो तो शंकर बना दो। तुम विष्णु के चरणों से प्रवाहित हुई हो और शिवाजी ने मालती की माला की तरह तम्हें अपने शीश पर धारण कर रखा है। तुम मुझे विष्णु नहीं, शिव बनाना जिससे तुम्हें मैं अपने मस्तक पर धारण कर सकूँ। अत्यन्त मर्मस्वर्शी है यह दोहा—

अच्युत चरण तरंगिणी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी कीजौ इन्दवभाल।।

इन्हीं रहीम ने पीड़ित जनता की हताशा को दूर कर दृढ़तापूर्वक रामत्व के साथ जुड़े रहने की प्रेरणा देने वाली तुलसीदास के महान् ग्रन्थ श्रीरामचरित मानस के बारे में लिखा था—

रामचरितमानस विमल संतन जीवन—प्रान।
हिन्दुआन को बेद सम जवनहिं प्रगट कुरान।।

सन्तों के जीवन प्राण सदृश निर्मल रामचरितमानस हिन्दुओं के लिए वेद तुल्य है और मुसलमानों के लिए वह कुरान के समान है, यह बात कोई हिन्दु नहीं कह रहा, बादशाहवंश के विद्वान प्रतिनिधि अब्दुर्रहीम खानखाना कह रहे हैं। तभी तो भाव विभोर हो कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था, ''इन मुसलमान हरिजनन पै कौटिक हिन्दु वारिये।''

भारतीय मुस्लिम समाज में भारतीय संस्कृति का संचार करने की दृष्टि से हिन्दी के सूफी कवियों मौलाना दाऊद, कुतुबन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी आदि का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन कवियों ने इस्लाम की धार्मिक शब्दावली को सहज ही हिन्दी में रूपान्तरित कर दिया। अल्लाह और खुदा के साथ करतार, अलखनिरंजन सर्वव्यापी का भी प्रयोग उन्होंने परमेश्वर के लिए किया। इसी तरह नूरूल मुहम्मदिया को ज्योति प्रकाश, बहिश्त को कैलास, कुरान शरीफ को पुराण, रसूल को बसीठ कहने में उन्हें संकोच नहीं हुआ। अपनी धार्मिक आस्थाओं पर दृढ़ रहते हुए फारसी की मसनवी परम्परा के अनुसार ईश्वरवन्दना के बाद हजरत मुहम्मद साहब, प्रथम चारों खलीफों, शाहे वक्त और अपने गुरु की स्तुति करके ही वे कथा शुरु करते हैं। उनकी प्रेमकथाओं में भारतीय जीवन एवं संस्कृति के सजीव रूप के दर्शन होते हैं। बड़े चाव से बड़े अपनेपन के साथ उन्होंने भारतीय त्यौहारों, ऋतुओं और जीवन-पद्धति का चित्रण किया है। जायसी ने भारतीय दृष्टि को स्वीकारते हुए बेझिझक कहा है, ''बिधना के मारग हैं तेते, सरग नखत तन रोवां जेते'' अर्थात् विधाता तक पहुँचने के उतने मार्ग हैं जितने आकाश में तारे हैं और शरीर में रोएँ। वे अपने देश की संस्कृति से किस प्रकार एकमेक हो गये थे इसका एक प्रमाण यही है कि रामचरितमानस की रचना के चौंतीस वर्ष पूर्व उन्होंने अपने पद्मावत में रामकथा के विविध प्रसंगों का करीब एक सौ बार उल्लेख किया है। फिर भी वे सच्चे सूफी भक्त थे और निस्संकोच घोषणा करते थे कि भगवान् तक पहुँचने वाले पंथों में मुहम्मद के द्वारा निरूपित पंथ सबसे बड़ा और अच्छा है।

ऐसा नहीं है कि हिन्दी में लिखने के कारण सूफी भक्तों ने भारतीय संस्कृति को इस प्रकार अपनाया था। उर्दू के सबसे बड़े कवि मीर तकी मीर में भी यह तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलता है। उनका एक मर्मस्पर्शी शेर है जिसमें उन्होंने कहा है कि परमात्मा के सौन्दर्य के प्रकाश से ही सब दीपक चमकते हैं, चाहे वह मस्जिद की शमा हो या सोमनाथ का दीया–

उसके फरोगे-हुस्न से झमके हैं सब चिराग,
शम्मा हरम हो या कि दीया सोमनाथ का।

वे केवल इतना ही कह कर नहीं रुक गये कि मन्दिर के प्रदीप भी प्रभु के सौन्दर्य से प्रकाशमान् हैं, उन्होंने यह भी कह दिया कि मंदिर की महफिल में भी प्रभु को पाया जा सकता है, इसलिए कभी मंदिर में, कभी मस्जिद में हो आने में उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता था। अद्‌भुत सद्‌भाव झलका है उनके इस शेर में–

कभी मन्दिर में हो आओ, कभी मस्जिद में हो आओ।
कि मकसद तो उसे पाना है, जिस महफिल में हो आओ।।

और वे नजीर अकबराबादी जिन्होंने केवल तन से नहीं, मन से भी भींग कर भारत की वर्षा की बहारों की तारीफ के पुल बाँध दिये थे, श्रीकृष्ण की लीला पर कितने मुग्ध थे, उसका कुछ अनुमान उनकी उस प्रसिद्ध नज्म से किया जा सकता है जिसमें उन्होंने झूम कर कहा है–

यारो सुनो य' दधि के, लटैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं, कृष्ण कन्हैया का बालपन।।

यह दिवालोक की भांन्ति स्पष्ट है कि धार्मिक कट्टरता को लाँघ कर साधना और साहित्य के क्षेत्र में पठान-मुगल काल में ही भारतीय संस्कृति की उदारता को मुसलमान भाई अपना रहे थे। दाराशिकोह द्वारा उपनिषदों का फारसी अनुवाद करवाना भी इसी धारा की एक कड़ी है। यह देश का दुर्भाग्य ही है कि औरंगजेब की महजबी कट्टरता ने इस धारा को अवरुद्ध करना चाहा पर फिर भी मन्दगति से ही सही वह धारा प्रवाहित होती रही। सन्त प्राणनाथ जी ने समन्वय की दृष्टि से औरंगजेब को पत्र भी लिखा और अपने सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को निराकार रूप की उपासना का प्रवर्त्तन किया। असम के श्री शंकरदेव ने भी निराकार प्रभु की भक्ति पर ही बल दिया है। इसी तरह रीतिकालीन हिन्दी साहित्य पर फारसी का प्रभाव देखा जा सकता है। संगीत, नृत्य, चित्रकला में भी आदान प्रदान चलता रहा। यह उदार समन्वयी धारा निश्चय ही भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

आधुनिक काल का इतिहास तो अधिक ज्ञात है, अत: उसकी चर्चा संक्षेप में ही करना चाहता हूँ। १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध छेड़े गये प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पूर्व जनसंघर्ष की चेतना जगाने के लिए रोटी के साथ-साथ कमल को प्रतीक के रूप में चुनना, हमारी सांस्कृतिक चेतना के कारण ही संभव हो सका था। इस संग्राम में कंधे से कंधा मिलाकर हिन्दू और मुसलमान अंग्रेजी राज को उखाड़ फैंकने के लिए लड़े थे। दुर्भाग्य से इस स्वातंत्र्यसमर के विफल होने के बाद जनता में व्यापक हताशा फैल गयी। राष्ट्र को इस हताशा से उबारने के लिए पुन: एक बार हमारी सांस्कृतिक चेतना ही सक्रिय हुई। राजा राममोहन राय, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि महापुरुषों ने भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्षों को उभारकर और विकृतियों को नकार कर पुन: देश में नवजीवन का संचार किया। यह ऐतिहासिक तथ्य स्मरणीय है कि श्रीमद्भगवद्गीता इस काल की सर्वाधिक प्रेरक पुस्तक रही। ऋषि बंकिम, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी, विनाबा भावे, डॉ. राधाकृष्णन् तथा अन्यान्य मनीषियों ने गीता से प्रेरणा लेकर जनजागरण अभियान चलाया था। सशस्त्र क्रान्तिकारी और अहिंसक सत्याग्रही दोनों प्रकार से योद्धाओं के लिए गीता परम सम्बल थी। इस सांस्कृतिक जागरण का एक सुफल यह भी हुआ कि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और जीवन मूल्यों के अन्ध अनुकरण या अन्धवर्जन के अतिरेकों से मुक्त होकर भारतीय प्रबुद्ध चित्त ने भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान आदि के स्वस्थ समन्वय पर बल दिया।

इस सांस्कृतिक जागरण की फलश्रुति ही थे स्वाधीनता के सहिंस और अहिंस आन्दोलन। आरंभ में इन आन्दोलनों को सभी भारतीयों का समर्थन प्राप्त था, किन्तु कालान्तर में अंग्रेजों की कूटनीति के कारण कट्टरपंथी मुसलमान इनसे कटते गये। दुर्भाग्य की बात है कि ''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'' लिखने वाले अल्लामा इकबाल ने पाकिस्तान का बीजारोपण किया और एक समय के हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक, नरमपंथी नेता कायदे आजम जिन्ना अंग्रेजों की कूटनीति को सफल करते हुए पाकिस्तान के जनक बने। मजहब के आधार पर जिस पाकिस्तान की सृष्टि हुई थी वह १९७१ में टूट गया। स्वाधीन बांग्लादेश इस बात का प्रमाण है कि मजहब के नाम पर बने पाकिस्तान की नींव कितनी खोखली थी, बचे-खुचे पाकिस्तान में भी पंजाबी, सिन्धी, बलूच, पख्तून, मुजाहिर के भेद उग्र होते जा रहे हैं। मुजाहिरों के नेता अल्ताफ हुसेन ने तो साफ-साफ कह दिया है कि पाकिस्तान का निर्माण ऐतिहासिक भूल थी। इसीलिए उसने ''सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'' फिर से गाना शुरू कर दिया है।

इससे यही शिक्षा लेनी चाहिए कि उपासना पद्धति एवं सामाजिक रीति-नीति की भिन्नताओं के बावजूद सांझी भारतीय सांस्कृतिक चेतना को हमलोग और दृढ़ करें। यह याद रखें के स्वाधीनता संग्राम में भी और स्वाधीन भारत के विकास में भी सभी धर्मावलम्बी भारतीयों का योगदान रहा है। आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति एकरूपता की नहीं, अन्तनिर्हित एकता की पक्षधर रही है।

अपनी ऐतिहासिक परम्परा के उज्जवल पक्षों के प्रति श्रद्धा, मातृभूमि के प्रति निष्ठा, रूप में स्वस्थ परिवर्तनों को स्वीकारते हुए भी स्वरूप की निरन्तरता का बोध, विचार स्वातंत्र्य, विविध उपासना पद्धतियों, भाषाओं, सामाजिक एवं क्षेत्रीय पक्ष रहे हैं। मध्ययुग में राजनीति की उपेक्षा करने का भरपूर दंड हमलोग भोग चुके हैं अत: अब राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्णत: सजग रहना होगा। खासकर इस बात का ध्यान रखना होगा कि देश में बलिष्ठ राज्यों के साथ-साथ केन्द्र भी भरपूर बलिष्ठ हो जिससे हमारी सीमाओं पर कारगिल के सदृश अनुप्रवेश करने का दुस्साहस करने वालों को उचित सबक सिखाया जा सके।

संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसकी संस्कृति ने दूसरे देशों की संस्कृतियों से आदान-प्रदान न किया हो। आधुनिक युग में तो यह प्रक्रिया और तेज हो गयी है। फिर भी दुनिया का कोई दूसरा देश ऐसा नहीं है जो अपनी संस्कृति को सामाजिक संस्कृति कहता हो। अत: हमें भी अकुंठित चित्त से अपने देश की संस्कृति को सीधे-सीधे भारतीय संस्कृति ही कहना चाहिए।

संकल्प पाठ में ब्रह्माण्ड की स्थिति

डॉ0 ओम दत्त सरोच

इस जगत् में विद्यमान प्रत्येक कण, प्रत्येक चेतन और जड़ पदार्थ विराट् ब्रह्माण्ड का अंश है। ब्रह्माण्ड की स्थिति के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह महान जल राशि के बीच तैर रहा है।[1] इस तरह का एक ब्रह्माण्ड नहीं, अपितु अनेक ब्रह्माण्ड है। यहां अनेक ब्रह्माण्ड की बात दीर्घकाल साध्य तथा अनेक जन साध्यशोध का विषय है। यह ब्रह्माण्ड महा जल राशि के बीच परिभ्रमण कर रहा है। यह प्रतीकात्म रूप से कहा गया है। जगत् के अधिष्ठाता विष्णु है। विष्णु को नारायण भी कहा जाता है। नारायण 'नार+अयन' इन दोनों शब्दों के मेल से बना है। नार का अर्थ है जल तथा अयन का अर्थ है निवास स्थान। जिसका निवास स्थान जल में है।[2] वह नारायण अर्थात् विष्णु भगवान हैं। विष्णु भगवान जगत के मूल कारण (अव्यक्त रूप) तथा कार्य रूप (व्यक्त जगत् रूप) हैं।[3] मूल तत्त्व रूप विष्णु का स्थान जल है, अर्थात् अव्यक्त रूप में यह ब्रह्माण्ड जल में स्थित है, इसी लिए ब्रह्माण्ड के महा जलराशि में परिभ्रमण करने की बात यहां की गई है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी इस रहस्य को इस प्रकार से प्रकट किया गया है कि— तम आसीत्तमसागूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।। ऋ० १०/१२९/३ अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व यहां न सत था और न ही असत था। पृथ्वी आकाश आदि कुछ भी नहीं था। यह जगत् घने अन्धकार से ढका हुआ तथा जल के रूप में था। वैसे भी पौराणिक मान्यतानुसार भगवान विष्णु क्षीर सागर में विराजते हैं। न्याय वैशेषिक दर्शनानुसार जगत का मूल कारण अणु ही है, उस मूल तत्त्व को ही परमात्मा, भगवान, विष्णु, ब्रह्म आदि नाम दिये गये हैं। हाल ही में विश्वभर के वैज्ञानिकों द्वारा सर्न प्रयोगशाला में प्रयोगों से जिस गॉड पार्टिकल और हिग्स वोसान को खोजने का दावा किया गया, वही मूल तत्त्व है। जिसका गुणगान हजारों वर्षों से वेदों पुराणों में विभिन्न रूपों एवं नामों से होता आ रहा है।

ब्रह्माण्ड के सात आवरण : यह ब्रह्माण्ड जगत् सात आवरणों से घिरा है। ब्रह्माण्ड के सात आवरणों के रहस्य को समझने के लिए सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। विष्णु पुराण एवं अन्य पुराणों में सृष्टि रचना का वर्णन विस्तार से किया गया है।

जगत् का मूल कारण अव्यक्त या प्रधान है जिसे ब्रह्म, परमात्मा, परम पुरुष, भगवान आदि नामों से जाना जाता है। अव्यक्त में सत्व, रज तथा तमो गुण साम्यावस्था में रहते हैं। प्रधान तत्त्व अव्यक्त में विष्णु की शक्ति से विक्षोभ पैदा हुआ, और उससे महद् तत्त्व की उत्पत्ति हुई। यह महद् तत्त्व प्रधान तत्त्व से आवृत था। महद् के तीन रूप प्रकट हुए, सात्विक, राजस तथा तामस। ये तीन रूप ही सात्विक, राजस तथा तामस अहंकार तत्त्व कहलाये। ये तीनों अहंकार महद् तत्त्व से

आवृत हैं। तामस रूप अहंकार से आकाश तत्त्व तथा शब्द तन्मात्रा, आकाश से वायु तत्त्व तथा स्पर्श तन्मात्रा, वायु से तेज अग्नितत्त्व तथा रूप तन्मात्रा, तेज से जल तत्त्व और रस तन्मात्रा और जल से पृथ्वी तत्त्व और गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न हुए। इस सृष्टि क्रम को इस प्रकार समझा जा सकता है—

प्रधान (अव्यक्त)

↓

महद्—तत्त्व

↓

अहंकार

↓

पांच—महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी)

↓

पांच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)

इन पांच महाभूतों तथा पांच तन्मात्राओं के संघात में चैतन्य-रूप पुरुष अधिष्ठित होने पर जगत के बीज रूप अण्डे की उत्पत्ति हुई। यह अण्ड रूप ही विष्णु परमेश्वर का अधिष्ठान बना। यह अण्ड रूप बीज निरन्तर बढ़ता गया। यह अण्ड पांच महाभूतों तथा अहंकार व महद् से पूर्व की अपेक्षा दस गुणा अधिक मात्रा से युक्त है। अर्थात् पृथ्वी से दस गुणा जल, जल से दस गुणा तेज, तेज से दस गुणा वायु व वायु से दस गुणा आकाश, आकाश से दस गुणा अहंकार, अहंकार से दस गुणा महद्, महद् से यह अण्ड रूप जगत् आवृत है। इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड के सात आवरण हैं— महद्, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी।[४] इन्हीं सात आवरणों और उनके उत्तरोतर दस गुणा परिभाषा का संकेत संकल्प पाठ में करके ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि रचना के रहस्य का बोध करवाया गया है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार परमाणु के तीन रूप है— न्यूट्रोन, इलैक्ट्रोन और प्रोटोन। इन्हीं को सात्विक, राजस तथा तामस रूप अहंकार कहा गया है। इन तीनों का मूल रूप महद् तत्त्व है, जिसे अणु या परमाणु कहा जाता है। इस अणु महद् तत्त्व में विक्षोभ होने पर तीनों रूपों में विखण्डन होता है, जिससे अनन्त ऊर्जा निकलती है। यह अतन्त ऊर्जा ही जगत् उत्पति का कारण बनती है। विक्षोभ पैदा करने वाली शक्ति महद् तत्त्व रूप परमाणु में निहित रहती है, यहीं अव्यक्त या प्रधान या परमेश्वर शक्ति है, जिसकी व्याख्या विज्ञान अभी तक नहीं कर पाया है।

ब्रह्माण्ड का आधार : ब्रह्माण्ड का आधार शक्ति को चार दिग्गजों के रूप में वर्णित किया गया है। इन चार दिग्गजों के नाम कूर्म, वराह, धर्म तथा अनन्त है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह ब्रह्माण्ड को चारों ओर से स्तम्भित करने की जो शक्ति है, उसी स्तम्भन शक्ति को चार दिग्गजों के

रूप में प्रतीकात्मक रूप में वर्णित किया गया है। अण्डाकार ब्रह्माण्ड को उत्तर, दक्षिण तथा उपर, नीचे चारों ओर से स्तम्भित करने वाली परमशक्ति ही कूर्म, वराह, धर्म तथा अनन्त है।

इसके आगे संकल्प पाठ में वर्णन है कि यह ब्रह्माण्ड आठ दिग्गजों की सूडों से दोलायमान है। यह दिग्गज हैं– ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम तथा सुप्रतीक। यद्यपि मुख्य चार दिशायें है, परन्तु चार दिशाओं के चार दिक्कोणों तथा उपर नीचे को मिलाकर दस दिशायें बनती हैं जोकि इस प्रकार हैं– १. पूर्व, २. पश्चिम, ३. उतर, ४. दक्षिण, ५. आग्नेय (पूर्व और दक्षिण के मध्य), ६. वायव्य (दक्षिण और पश्चिम के मध्य), ७. नैर्ऋत्य (पश्चिम और उतर के मध्य), ८. ईशान (उत्तर और पूर्व के मध्य), ९. उपर, १०. नीचे। इस प्रकार इन दस दिशाओं के अधिष्ठाता भी दशदिक्पाल माने गए हैं! इसका तात्पर्य यही है कि दसों दिशाओं में भी परमेश्वर की परमशक्ति अधिष्ठित है तथा यह दस दिक्पाल भी उसी परमशक्ति के प्रतीक है, जिनको विभिन्न नाम दिये गए हैं।

चौदह लोक : इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोक या चौदह भुवन हैं। इनमें सात लोक पृथ्वी एवं पृथ्वी से उपर है, तथा सात लोक पृथ्वी से नीचे हैं, जिन्हें पाताल कहा जाता है। भूलोक से सत्य लोक तक सात लोक पृथ्वी से उपर एक के उपर एक स्थित है! उपर के सात लोक हैं–

१. भू लोक, २. भुव: लोक, ३. स्वर्लोक, ४. मह:लोक, ५. जन:लोक, ६. तप:लोक, ७. सत्य लोक!

इन सात लोकों में तीन भू, भूव: तथा स्व: कृतक तथा तीन जन:, तप: तथा सत्य अकृतक कहलाते हैं! इस प्रकार कृतक त्रिलोकी तथा अकृतक त्रिलोकी के मध्य में मह: लोक स्थित है! मह: लोक कल्पान्त में भी स्थित रहता है।[५]

भू लोक : जहां तक सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश जाता है, तथा समुद्र, नदी पर्वत आदि से युक्त वह लोक भूलोक कहलाता है।[६] पृथ्वी के अंश वाला जो भी संचरणशक्ति पदार्थ है, वह भूलोक ही है। भूलोक को ही केन्द्र बिन्दु मानकर ब्रह्माण्ड के चौदह लोकों को सात उपर तथा सात नीचे की स्थिति बताई गई है।

भुव: लोक : भूलोक के उपर भव: लोक है। इसकी स्थिति पृथ्वी और सूर्य के मध्य कही गई है! यहां सिद्ध गणों और मुनि गणों का निवास माना गया है।[७] इस का विस्तार भू लोक के समान है।

स्व:लोक : पुराणों के अनुसार सूर्य मण्डल और ध्रुव मण्डल के बीच चौदह लाख योजन विस्तृत स्व:लोक स्थित है।[८] स्व: लोक में देवताओं का निवास है, ऐसा माना जाता है। इसे ही स्वर्ग कहा गया है।

मह:लोक : मह: लोक की स्थिति ध्रुव मण्डल से एक करोड़ योजन उपर बताई गई है। मह:लोक में भृगु सदृश सिद्ध पुरुषों का निवास है। मह:लोक कल्पान्त में भी प्रलय में विलीन नहीं होता है। मह: का अर्थ तेज होता है। अत: मह:लोक तेजोमय है। यह सात उर्ध्व लोकों के मध्य में है। इससे तीन लोक नीचे तथा तीन उपर स्थित हैं।[९]

जन:लोक : मह:लोक से दो करोड़ योजन उपर जनलोक की स्थिति है। जनलोक में ब्रह्मा के मानस पुत्रों सनकसनन्दनादि का निवास माना गया है।[१०]

तप:लोक : तपलोक जनलोक से आठ करोड़ योजन उपर स्थित है। इस लोक में वैराज नामक देवगणों का निवास है। इन देव गणों का कभी दाह नहीं होता, अर्थात् ये अमर है। तपलोक जैसा कि नाम से स्पष्ट है, तपोबल प्रधान हैं। इसकी प्राप्ति दीर्घकालिक कठोर तप से होती है

सत्यलोक : तप लोक से बारह करोड़ योजन दूर सत्यलोक स्थित है। सत्यलोक को ब्रह्म लोक भी कहा जाता है। यहां जन्ममरण रहित देव गणों का निवास है।[११] यह पृथ्वी (भूगोल)ये उपर सात लोकों तक ब्रह्माण्ड का विस्तार कहा गया, जोकि करोड़ो योजन का है।

सात पाताल : भूलोक (पृथ्वी लोक) से नीचे सात लोक हैं जिन्हें पाताल कहते हैं। उनके नाम हैं— १. अतल, २. वितल, ३. नितल, ४. गभस्तिमान, ५. महातल, ६. सुतल, ७. पाताल। ये प्रत्येक दस-दस सहस्र योजन की दूरी पर स्थित हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में चौदह लोक स्थित हैं जोकि सात पृथ्वी भू लोक से उपर तथा सात भूलोक से नीचे स्थित है। भूलोक ब्रह्माण्ड का केन्द्र या मध्य भाग कहा जा सकता है। ब्रह्माण्ड का विस्तार इस चित्र के माध्यम से इस प्रकार समझा जा सकता है—

ब्रह्माण्ड के चौदह लोक

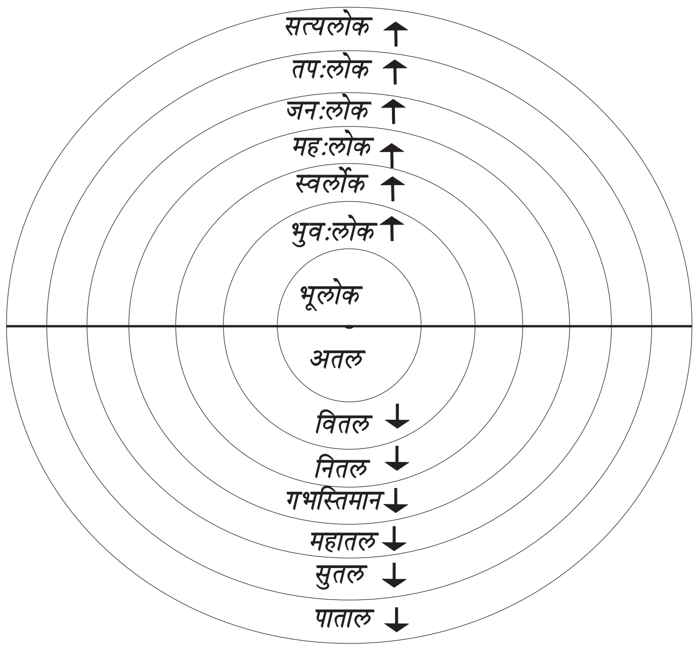

संकल्प पाठ एवं कर्मकाण्ड सम्बन्धी विनियोगों में मन्त्रों के साथ तीन व्याहृतियां भू: भुव: स्व: प्रयोग की जाती है। क्योंकि ये तीन लोक कृतक कहलाते हैं जिसका तात्पर्य है कि इन तीनों लोकों का सम्बन्ध कर्मशीलता के साथ है। कर्म-फल से इन तीन लोकों तक प्राणी की गति हो सकती है। कई मन्त्रों के साथ, जैसे प्राणायाम आदि मन्त्रों में सात व्याहृतियों ''भू: भुव: स्व: मह: जन: तप: सत्य: का उच्चारण होता है। ऐसे मन्त्र प्रयोगों से सात लोकों तक गति की कामना होती है। यह आध्यत्मिक पक्ष है। क्योंकि मह: जन: तप: सत्य आदि लोकों की प्राप्ति केवल तप: साध्य ही है। प्राणायाम्, ध्यान, समाधि आदि द्वारा ही उस स्थिति तक पहुंचा जा सकता है। अत: कर्म-फल प्रधान कर्मों में तीन व्याहृतियों व कर्म एवं तपोफल प्रधान कर्मों में सात व्याहृतियों का उच्चारण करने का विधान है। संकल्प पाठ से विराट ब्रह्माण्ड की उत्पति से लेकर उसकी स्थिति व विस्तार का सम्पूर्ण ज्ञान एवं उसके साथ आत्मिक तादात्म्य की अनुभूति होती है।

सन्दर्भ सूची :

१. महाजलौघ मध्ये परिभ्रममाणामनेक कोटिब्रह्माण्डानाम्....(महासंकल्प पाठ)

२. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव:।
अयनं तस्य ता: पूर्वं तेन नारायण: स्मृत:।। विष्णु पुराण १/४/६

३. नमस्ते परमात्मात्पुरुषात्मन् नमोस्तुते।
प्रधानव्यक्तभूताय कालभूताय ते नम:।। वि० पु० १/४/१४

४. वि० पु० १/२/३३-६०
पृथिव्यप्ततेजोवायवाकाशाहंकारमहद् व्यक्तात्मकै: दशगुणैत्तरै........... (महासंकल्प पाठ)

५. वि० पु० २/७/१९

६. वि० पु० २/७/३

७. वि० पु० २/७/१७

८. वि० पु० २/७/१८

९. वि० पु० २/७/१२

१०. वि० पु० २/७/१३

११. वि० पु० २/७/१४

१२. वि० पु० २/७/१५

प्राचार्य
श्री विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय,
चकमोह, जिला - हमीरपुर (हि०प्र०)

वनस्पति विज्ञान

भारतीय सृष्टि सिद्धान्त और वनस्पति विज्ञान

डॉ. ज्योति गुप्ता

भारतीय सृष्टि विज्ञान में प्रलय और पुन: सृष्टि के सिद्धांतों पर ऋषियों ने गहन चिन्तन और मंथन किया है। ऋषियों की इन वैज्ञानिक साधनाओं के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर जैव बीज के विकास की तीन अवस्थाएं समक्ष आती हैं। इन तीन अवस्थाओं में अर्थ प्रधान अवचेतन सृष्टि, अर्धचेतन सृष्टि और सचेतन सृष्टि है। क्रम में द्वितीय स्थान पर उद्धृत अर्धचेतन सृष्टि ही वनस्पति विज्ञान की पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। आज विश्व के वैज्ञानिक वनस्पति विज्ञान के जिन सिद्धांतों को विश्व के मानसपटल पर अंकित कर रहे है, उनके मूल सूत्र ऋषियों की चिन्तन धारा में निहित हैं। यहां क्रमश: इन तीनों सिद्धांतों को प्रस्तुत कर ऋषि प्रज्ञा के वानस्पतिक चिन्तन की वैज्ञानिक परिधियों को रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा।

ऋषि प्रज्ञा पृथ्वी पर जैव बीज के आगमन की बात प्रकाश के माध्यम से करती है। प्रलयावस्था में जैव द्रव्य प्रकृति के बहिर्भूत होता हुआ 'चेतना' रूप से पृथक् हो जाता है। ऋषियों ने इसे अनन्त चेतना का 'अयन' कहा है। यह अवस्था प्राणमय होती है। सत्त्व, रज और तमस ये तीनों गुण प्रकृति को एक स्थिर संतुलन की अवस्था तक पहुँचा देते हैं। यही वह अवस्था है जब प्रकृति जैव प्राण को अपने से अलग कर देती है। प्रलयकाल के पश्चात् जब पुन: सृष्टि का काल आता है तो जैव प्राण उसे संक्षुब्ध करके आच्छादित करता है। परिणाम स्वरूप जैव प्राणों के संस्कार पुनर्जागृत हो जाते हैं और सृष्टि क्रम का विकास प्रारम्भ हो जाता है।

ऋषि प्रज्ञा सृष्टि के इस क्रम में पृथ्वी पर जैव बीज का आगमन प्रकाश के माध्यम से मानती है। वेदों, उपनिषदों और दर्शन शास्त्रों में उल्लेख आते हैं कि जब प्राण प्रधान सौर ऊर्जा का तेज पृथ्वी पर विद्यमान 'वैश्वानर'' अग्नि के द्वारा प्राप्त किया जाता है तो अर्थ प्रधान 'अवचेतन' सृष्टि होती है। सृष्टि के इस विकास में सौर तेज और पृथ्वी की वैश्वानर अग्नि इन दोनों के अंश विद्यमान रहते हैं। इन दोनों अंशों की विद्यमानता के उपरान्त भी इस सृष्टि क्रम में पार्थिव अग्नि वैश्वानर के अंश की ही प्रधानता रहती है। अन्तरिक्ष का वायु तत्त्व भी इस सृष्टि क्रम में स्वल्प विकसित रूप में रहता हैं। वस्तुत: सूर्य का सम्बन्ध ज्ञान चैतन्य से है और वायु तत्व क्रिया प्रधान होता है। इस सृष्टि क्रम में ज्ञान और क्रिया, इन दोनों का अभाव रहता है। सृष्टि के इस क्रम में जो जैव विकास हमारे समक्ष आता है वह सुवर्ण, लोहा, हीरा, नीलम, रत्न आदि धातुओं के रूप में देखा जा सकता है। पारद आदि रसायन भी इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इस सृष्टि क्रम में

वैश्वानर पार्थिव अग्नि की ही प्रधानता रहती है।

पृथ्वी पर जैव बीज का द्वितीय विकास 'अर्धचेतन' सृष्टि का देखा जा सकता है। ऋषियों ने जैव बीज के इस अर्धचेतन विकास के सूक्ष्मतम पक्षों का भी साक्षात्कार किया है। इस क्रम में सूर्य का सचेतन तेज और वायु का अंश पूर्व सृष्टि के विकास से कुछ अधिक होता है। परिणाम स्वरूप सृष्टि के इस क्रम में चेतन तत्त्व और क्रिया दोनों का अल्प विकास विद्यमान है। अल्प विकास की इस प्रक्रिया में शैवाल, काश, दूर्बा, तृण तथा वृक्ष आदि के रूप में चेतन अथवा जीवन धारा को देखा जा सकता है। यहीं से वनस्पति विज्ञान की पृष्ठभूमि का क्रम प्रारम्भ होता है।

वेदों में वनस्पति विज्ञान के इस क्रम को ऋषियों ने अपनी साधना के बल पर मन्त्रों में पिरोया है। ऋषियों की साधना के परिणामस्वरूप वेदों में उल्लेख मिलता है कि वनस्पति विकास के इस क्रम में ज्ञान के अंश का अल्प विकास हो पाया। वायु तत्त्व प्रबल रहा और सौर तेज कम। वायु की प्रबलता और क्रिया शक्ति की सक्रियता से सृष्टि के इस क्रम में वनस्पतियाँ विकासोन्मुख होती रही है। पृथ्वी वनस्पति के इस विकास क्रम को अपनी ओर आकर्षित करती है क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति गुरूतर होती है। यही कारण है कि वनस्पतियाँ पृथ्वी से पृथक् नहीं हो पाती। वनस्पति अपनी जड़ों के कारण पृथ्वी से बंधी रहती है। मूल अथवा जड़ों से बंधी वनस्पतियाँ अपना ऊर्ध्वगामी विकास करती है। वेदों में वनस्पति के इस सर्ग को 'पादप' के रूप में जाना जाता है। पादप का व्युत्पत्तिलभ्यार्थ है पाद अर्थात् जड़ से जल पीने वाले पौधे। ऋषियों ने इसे एकेन्द्रिय विकास की सृष्टि कहा है। वस्तुत: इस सृष्टि में वैश्वानर और तेज तत्त्व इन दोनों का विकास माना जाता है। वायु तत्त्व के प्राधान्य के कारण ही इसकी द्योतक एक इन्द्रिय त्वक् (त्वचा) विकसित होती है।

सृष्टि का तृतीय क्रम कृमि से लेकर पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सभी प्राणियों के रूप में देखा जा सकता है। सृष्टि के इस क्रम मे वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ चेतना के तीनों स्तर प्रबल रहते हैं। परिणामस्वरूप ज्ञान, क्रिया और अर्थ तीनों की विद्यमानता इस सृष्टि में रहती है। वस्तुत: सूर्य की सचेतन ऊर्जा सृष्टि के इस क्रम में अधिक मात्रा में प्रकट होती है। परिणाम स्वरूप प्राज्ञ (बुद्धि) भाग के कारण जागृत चैतन्य का विकास सम्यक् रूप से हुआ। इस प्रकार अवचेतन विकास अर्थप्रधान धातु सृष्टि, अर्धचेतन विकास क्रिया प्रधान मूल अर्थात् पादप सृष्टि और चेतन प्रधान जीवन सृष्टि का क्रम हमारे समक्ष आता है।

वनस्पति विज्ञान अर्धचेतन विकास के कई महत्त्वपूर्ण पक्षों को समेटे हुए है। यहां पाद अर्थात् एक ही इन्द्रिय द्वारा वनस्पति अपना पोषक आहार पृथ्वी से प्राप्त करती है। इसी कारण भूमि से वनस्पति पृथक् नहीं हो पाती। वैदिक ऋचाओं में इसलिए इस सर्ग को 'पादप' सर्ग कहा गया है। प्राणी सृष्टि पर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए भूमि से यह सृष्टि चिपकी हुई नहीं रहती और अपने मूल से हटकर प्राणी जगत पृथ्वी पर विचरण करने में सक्षम

है। इसी कारण वेदों में इस सृष्टि को 'पादयुक्त' कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में इस भाव को निम्न रूप से प्रकट किया गया है।

अयं पुरुषः अमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्षमनुचरति।। (शतपथब्राह्मण २.१.१३)

वनस्पति की सृष्टि में एक ही इन्द्रिय के विकास के कारण पेड़-पौधों का पृथ्वी पर विचरण संभव नहीं होता परन्तु अर्धचेतना के इस सर्ग का प्राणी जगत के लिए विशेष महत्त्व है। वस्तुतः ऐसा इस सृष्टि के औषधीय गुणों के कारण है। प्राणी सृष्टि वनस्पति के औषधीय गुणों के बिना अपना जीवन यापन नहीं कर सकती। ऋग्वेद जो अखिल मानव सृष्टि का आदि ग्रन्थ है, में वनस्पति विज्ञान के इन्हीं औषधीय गुणों का ऋचाओं में ऋषि महत्त्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं। अथर्ववेद में तो इन औषधीय तत्त्वों की भूमिका को निबद्ध किया गया है।

वनस्पति विज्ञान के महत्त्व को देखते हुए ऋषियों ने इस विज्ञान के सृष्टि क्रम को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए वनस्पतियों की पूजा के कई सिद्धांत स्थापित किए। वेदों में वनस्पति विज्ञान की जिन औषधियों का विवरण उपलब्ध होता है, उनमें वटवृक्ष, अश्वत्थ, शाल्मली, अजशृंगी, उदुम्बर, किंशुक, कुमुद, कुवल, कुष्ठ, खदिर, खर्जुर, गवीधुक, गुग्गल, गोधूम, तण्डुल, तिल, दर्भ, दूर्वा, न्यग्रोध, पर्ण, पलाल, पिप्पली, पुण्डरीक, पुष्कर, प्रियंगु, प्लक्ष, बदर, बिल्ब, माष, मंजु, यव, वेणु, वतस् ब्रीहि, शमी, शिंशपा, हरिद्रा ओर सोमलता आदि प्रसिद्ध हैं।

प्राणी जगत के लिए वनस्पति सृष्टि की उपयोगिता और अन्योऽन्यभाव के कारण ही ऋषियों ने जनसाधारण तक इनके औषधीय गुणों को पहुंचाने के दृष्टिकोण से इनको मानव के आध्यात्मिक पक्षों के साथ साधना का विषय बनाया। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ***अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् –गीता १०/२६*** अर्थात् सब वृक्षों में मैं अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष हूँ, में श्रीकृष्ण ने 'अश्वत्थ' वृक्ष को अपनी विभूति बतलाकर वृक्षों में अश्वत्थ की श्रेष्ठता को स्थापित किया।

पंचवट (पीपल, गूलर, बरगद, पाकड़ एवं आम) को विशेष रूप से पूजनीय माना गया है। अश्वत्थ इसमें सर्वोपरि है। कारण इसके मूल में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान् श्री हरि और फलों में सब देवताओं से युक्त अच्युंतानन्दन श्री भगवान सदा निवास करते हैं।

इसी तरह 'तुलसी' को विष्णु का प्रिय माना गया है। तुलसी अश्वत्थ की भांति आराध्या, श्रद्धेया एवं वन्दनीय रही है। कारण तुलसी में फूल से लेकर उसकी छाया तक में सभी देवता और तीर्थ निवास करते है। तुलसी की गन्ध चारों दिशाओं की वायु को शुद्ध करती है। इसलिए तुलसी का धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष महत्त्व है। इसी तरह 'विल्वफल', हल्दी आदि पौधों का भी धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष महत्व है। विल्वफल शोक हर तथा मस्तिष्क को शान्ति देने वाला है। दुर्वा,

अबीर एवं आम्रपल्लवों का तोरण संक्रामक कीटों का नाशक है। विभिन्न जाति के पुष्प जैसे बेला, मोतिया, मोगरा, गेंदा आदि का पूजा के समय उपयोग किया जाता है। ये सभी पुष्प सौमनस्यजनक तथा कीटाणु नाशक होते हैं।

अशोकवृक्ष हिन्दुओं का एक बहुत ही पवित्र वृक्ष माना गया है। इसे कामदेव का प्रिय वृक्ष भी माना गया है। यह वृक्ष प्यार का प्रतीक है। 'चन्दन' का लेप देवताओं एवं पूजा करने वाले के माथे पर पूजा के समय किया जाता है। चन्दन पित्तनाशक और त्वचा के रोगों को शमन करने वाला है। निम्ब वृक्ष महाभिषक होने के कारण पूजनीय माना गया है। 'धतूरे' का शिव से, प्लक्ष का ब्रह्म से और पीपल का विष्णु से सम्बन्ध माना गया है। इस प्रकार पेड़-पौधों के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दिव्यता के दर्शन करना अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में रहा है। चरक संहिता में वर्णित वनस्पतियों में अनेक ऐसी महत्त्वपूर्ण वनस्पतियां हैं जिनका उपयोग आज भी औषधियों के निर्माण के लिए किया जाता है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में इन वनस्पतियों का प्रयोग अधोलिखित रूप से है।

'आंवला' विटामिन 'सी' का एक विशेष स्रोत है। यह विटामिन कृत्रिम विटामिन 'सी' की अपेक्षा क्षय रोग से ग्रसित व्यक्ति के लिए ज्यादा प्रभावी है। 'अश्वगन्धा' शारीरिक दुर्बलता और गठिया के रोगों के उपचार में सहायक है। अल्सर व सूजन की स्थिति में इसका लेप विशेष लाभदायक है। 'पिप्पली' वनस्पति गठिया और लकवा के रोगों में उत्तम है। इसके कच्चे फलों से बनी औषधी पुराने श्वास रोगों के लिए उपयोगी है। 'रसौत' का मुख्य रसायन Barberine है। यह अल्सर के उपचार एवं हैजे के रोगों के निदान में गुणकारी है। यह क्षय रोगों एवं हृदय रोगों के उपचार में भी उत्तम है। 'प्लाश' (टेसू) के बीजों से बनी औषधी पेट के कीड़े मारने के काम आती है। यह दाद, खाज जैसे चर्मरोगों के उपचार में प्रयुक्त होती है। इसकी जड़ों की छाल की औषधि उच्च रक्तचाप के इलाज में लाभदायक है। 'ब्रह्मी बूटी' कुष्ठ रोगों के निवारण में सहायक है। इसका नियमित सेवन स्मरण शक्ति बढ़ाने में सहायक होता है। 'भृंगराज' का रस चर्म रोगों के उपचार में सहायक है। हल्दी की सूखी जड़ों को पीसकर बनाए गए पाउडर में एंटीसैप्टिक गुण होता है।

हिन्दू धर्म की एक मान्यता के अनुसार एक 'अश्वत्थ वृक्ष' व्यक्ति को धन धान्य से सम्पूर्ण बनाता है। एक 'पलाक्श वृक्ष' व्यक्ति को मशहूर बनाता है। अशोक वृक्ष व्यक्ति को प्रसन्नचित, निम्बवृक्ष शक्तिवान तथा पलाश वृक्ष बुद्धिमान बनाता है।

आयुर्विज्ञान शास्त्र के आचार्यों ने विभिन्न द्रव्यों के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारियां एकत्रित की है। जिनका समर्पणात्मक प्रयोग हम पूजन में करते हैं। जैसे 'वट वृक्ष' के पूजन में किया गया समर्पणात्मक प्रयोग देवता द्वारा हमारी फल प्राप्ति के लिए होता है। कोई भी कर्म निष्फल नहीं होता इसलिए पूजन भी पूजनीय देव विशेष की प्रसन्नता के अनुसार हो तो उसका प्रतिफल पूजक को अवश्य होता है। चूंकि पूजन काम्य कर्म है इसलिए उसका फल कामनानुसार होता है। तथापि

आयुर्विज्ञान शास्त्रोक्त द्रव्यगुण की दृष्टि से भी उसका फल प्राप्त होना स्वाभाविक है। इस प्रकार इन पूजा द्रव्यों की आधिदैविक महत्ता के साथ-साथ वैज्ञानिक महत्ता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

वनस्पति विज्ञान वस्तुत: आदिकाल से भारतीय समाज के लिए दैनिक क्रिया का अभिन्न अंग रहा है। ऋषियों के सिद्धांतों और स्थापनाओं के कारण जनसाधारण भी वनस्पति विज्ञान के औषधीय गुणों से युगों-युगों से परिचित रहा है। आयुर्वेद ऋषियों की चिन्तनधारा का वैज्ञानिक परिणाम है। यह सही है कि पाश्चात्य जगत में प्रयोगशालाओं के माध्यम से वनस्पति विज्ञान के तत्त्वों को समझने में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। परन्तु यह बात भी तथ्यपरक है कि भारत की ऋषि प्रज्ञा ने वनस्पति विज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान को अपनी साधना का केन्द्र बनाया था। आज किसी भी विश्वविद्यालय, विद्यालय या शोध केन्द्रों में ऋषि प्रज्ञा की उस चिन्तनधारा को अधिमान नहीं दिया जाता जिस चिन्तनधारा के बल पर पाश्चात्य जगत ने अपने नए-नए सिद्धांत स्थापित किए। ऋषियों ने सृष्टि के इतने सूक्ष्म ज्ञान को भी यदि अपनी साधना की प्रयोगशालाओं में विकसित किया है तो आज हम उस सूक्ष्मज्ञान को अध्ययन, अध्यापन और शोध का विषय क्यों नहीं बना सकते?वस्तुत: ऐसे यक्ष प्रश्न आज हमारे समक्ष खड़े हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद् ज्ञानपुर वाराणसी, सन् १९८८।
२. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रैस गोरखपुर।
३. ऋग्वेद संहिता, (दशम सूक्त), भाग-८, व्या, पं. राम स्वरूप शर्मा गौड़, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, २००७।
४. विश्व की काल यात्रा, वासुदेव पोद्दार, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, दिल्ली, सं. २०५६।
५. वेद विज्ञान वीधिका, डॉ. दयानन्द भार्गव, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, १९९६।

सहायक आचार्य वनस्पति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय अर्की,
जिला सोलन (हिमाचल प्रदेश)

पंजाब की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार

भूमि दत्त शर्मा

भारतीय शास्त्रों, ग्रन्थों में सृष्टि रचना के सम्बन्ध में ऋषि–मुनियों के गहन विचार वर्णित हैं जिसका प्रभाव हमारी लोक परम्पराओं में भी दृष्टिगोचर होता है। पंजाब प्रान्त की लोक परम्परा में भी सृष्टि रचना के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर लोक धारणाएं प्रचलित हैं जिसमें ऋषि परम्परा के चिन्तन के वैचारिक तत्त्वों के साथ लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति का समावेश बड़े स्वाभाविक प्रवाह में हुआ है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में पंजाब के लोक मानस में अवधारणा है कि प्रलय काल में महा अन्धकार छाया हुआ था। परमपिता को जब सृष्टि रचना की इच्छा हुई तो उस अन्धकार में एक विराटकाय अण्डा निर्मित हुआ। कुछ समय के बाद वह अण्डा बीच में से इस प्रकार से टूटा कि अण्डा ऊपर और नीचे दो भागों में बंट गया। जिसके ऊपर के भाग से आकाश बना और नीचे के भाग से धरती का निर्माण हुआ। इस धरती को धौले (धवल रंग के) बैल ने अपने एक सींग पर टिकाया है। जब बैल एक सींग पर थामें-थामें थक जाता है तो वह इसे दूसरे सींग पर थमाता है। एक सींग पर से दूसरे सींग पर जब धरती को बदला जाता है तो उस समय धरती कांपती है और धरती पर भूचाल आ जाता है।

एक बार भगवान् सुनसान दुनिया में बैठे-बैठे मिट्टी से खेलने लगे और उन्होंने मिट्टी का एक पुतला बनाया और एक रूह (आत्मा) को कहा कि वह इस पुत्तले में प्रवेश करे। रूह ने भगवान् से कहा कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। लेकिन मेरी प्रार्थना है कि मुझे सदा के लिए इस पुत्तले में मत रखना। भगवान् ने रूह को भरोसा दिया कि उसे कुछ समय के उपरान्त पुत्तले से बाहर निकाल दिया जाएगा। रूह ने पुत्तले में प्रवेश किया और प्राणधारी मनुष्य बन गया। इस तरह भगवान ने कुछ और भी पुत्तले बनाए। कुछ पुत्तले मर्दाना (पुरुष) बने और कुछ जनाना (स्त्री) बने। सब में रूह भरी गई। अब रूहों का पुत्तलों से मोह हो गया। वे पुत्तलों को नहीं छोड़ना चाहती थीं। लेकिन, भगवान ने पुत्तलों से रूहों को अपने वायदे के अनुसार समय-समय पर बाहर निकालने का नियम बनाया और संसार में इस आधार पर जन्म और मृत्यु का सिलसिला चला।

एक लोक कथा इस रूप में भी प्रचलित है कि जब भगवान् ने मिट्टी के पुत्तले में रूह का प्रवेश करवाया तो भगवान् ने रूहधारी मनुष्य को आवाज लगाई – ***'उं माणुआं' अर्थात् हे मानव! तो मानव ने उत्तर में कहा 'हूँ'। भगवान् ने उसे फटकार दी कि किसी भी बेले तेरी बणगी धूं' अर्थात् किसी भी समय तेरा यह पुत्तला (शरीर) धुंआ हो जाएगा। कहा जाता है कि यह फटकार मनुष्य के अहंकार पूर्ण 'हूँ' कहने पर दी गई। यदि मनुष्य शालीन भाव से 'हां जी' में उत्तर देता***

तो भगवान् उसे 'लक्ख बरसां जी' का वरदान देते और मनुष्य एक लाख वर्ष तक जीवित रहते लेकिन अशिष्टता से 'हूँ' कहने के कारण मृत्यु का समय अनिश्चित है और इसीलिए जन्म लेने के बाद किस घड़ी-पल में मनुष्य को मृत्यु आ घेरती है, यह किसी को कोई पता नहीं होता।

पंजाब की लोक कथाओं में सृष्टि की विचित्र लीलाओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार की धारणाएं व्यक्त की जाती है। जैसे कि सूरज तपता है और चांद शीतल रहता है, इस बारे में कहा जाता है कि सूरज और चांद आपस में सगे भाई हैं। सूरज नटखट आदतों से अपनी माँ को सदा परेशान करता था। चन्द्रमा अपने शांत स्वभाव से माता को शीतलता प्रदान कर सुखी रखता था। एक दिन सूरज से तंग आ कर माता ने सूरज को श्रापित किया कि जिस प्रकार तू मेरे दिल को हमेशा दु:खी करके जलाता रहता है, उसी प्रकार जब तक यह सृष्टि रहेगी तब तक तू जलता रहेगा और साथ ही चन्द्रमा को वरदान दिया कि जिस प्रकार तुम मेरे मन को हमेशा शीतलता प्रदान करते रहे, तुम इसी प्रकार सृष्टि के रहते तक शीतल बने रहोगे।

चन्द्रमा घटता-बढ़ता क्यों है? इस बारे में भी पंजाब में लोक कथा प्रचलित है कि चन्द्रमा की २७ पत्नियां थी जो कि एक ही ऋषि की बेटियां थी। चन्द्रमा की इनमें से केवल एक ही प्यारी थी, अन्यों की वह हमेशा उपेक्षा करते थे। एक बार एक को छोड़ कर छब्बीस बहनें अपने पिता ऋषि के पास गईं और उनसे अपना दु:खड़ा रोया। ऋषि के हृदय में बेटियों की पीड़ा से असहय वेदना हुई और चन्द्रमा को शापित किया कि वह प्रतिदिन नमक की तरह गलता जाएगा। सतयुग की बात थी। ऋषि का शाप फलीभूत हुआ। चन्द्रमा प्रतिदिन गलने लगा। तेरहवें दिन तक चन्द्रमा गल कर नाममात्र का रह गया। तब उसकी प्यारी पत्नी ने सब बहनों को इकट्ठा किया और अपने सुहाग की रक्षा के लिए उपाय करने के लिए विचार विमर्श किया। तब बहनें पुन: ऋषि के पास गई और अपने सुहाग की रक्षा के लिए रोने बिलखने लगी। ऋषि ने अपनी बेटियों से कहा कि शाप को वापिस तो नहीं लिया जा सकता लेकिन इतना अवश्य है कि इसके प्रभाव को कम करके चन्द्रमा के जीवन की रक्षा की जा सकती है। तब ऋषि ने कहा कि अब से चन्द्रमा में महीने में पन्द्रह दिन घटता रहेगा और उसके बाद पन्द्रह दिन तक बढ़ते-बढ़ते पन्द्रहवें दिन अपने पूर्ण यौवन में चमकेगा। तब से चन्द्रमा का स्वरूप पन्द्रह-पन्द्रह दिन घटता-बढ़ता है। चन्द्रमा के पन्द्रह दिन घटने के समय को बदि और पन्द्रह दिन बढ़ने के समय को सुदि कहते हैं। शास्त्रों में बदि को कृष्ण पक्ष और सुदि को शुक्ल पक्ष कहते हैं।

इस प्रकार पंजाब की लोक परम्परा में अनेक लोक कथाएं सृष्टि रचना की विचित्र लीलाओं से जुड़ी हैं जो कि यहां के लोक मानस में ऋषि परम्परा के व्याप्त प्रवाह एवं लोक चिन्तन की स्वाभाविक वृत्तियों की परिचायक है।

मकान न. ४४, वार्ड न. ६
गांधी नगर, हमीरपुर - १७७००१
(हिमाचल प्रदेश)

हमीरपुर की गुगा गाथा में सृष्टि विचार

डॉ. रमेश शर्मा

अज्ञात सत्ता के रहस्यों से परतें उठाना मानव प्रादुर्भाव से जुड़ा है। ब्रह्माण्ड, लोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा, जन्म, मृत्यु आदि विषय प्रत्येक समाज के चिन्तन के स्वाभाविक अंग है। यह चिन्तन धर्म, अध्यात्म और विज्ञान से जुड़ा है। कोई इसकी 'प्रत्यक्ष ही प्रमाण' के आधार पर व्याख्या करता है तो अन्य मत 'जहां धुआं है, वहां अग्नि भी होगी' के आधार पर कारण—कार्य सम्बन्ध का उल्लेख करता है। किसी भी मानव समूह की यह विचार परम्परा लोक संस्कृति में व्याप्त रहती है। हम कौन है या हमारा अस्तित्त्व क्या है, इस विचार शृंखला को लोक परम्परा में लगभग सब स्थान पर देखा जा सकता है। यदि भारत से बाहर की लोक परम्परा में देखा जाए तो वहां भी जलप्लावन, शून्य, अन्धेरा, बिग-बैंग (महाविस्फोट) तथा आदिम पुरुष और स्त्री का वर्णन किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर उपलब्ध है। पंचतत्त्व या त्रिगुणमयी सृष्टि का विश्लेषण सर्वत्र मिलता है। आश्चर्यजनक ढंग से सर्वत्र 'महाविस्फोट' का वर्णन है और तत्पश्चात् पृथ्वी या सृष्टि रचना का प्रारम्भ माना जाता है। लोक संस्कृति में लोक गाथाओं, लोकगीतों एवं लोक नाट्य परम्परा में अनेक स्थानों पर सृष्टि रचना वर्णित है।

हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जनपद में रास एवं भगत लोक नाट्य में तथा ओमकारा एवं गुगा गाथा के गायन में सृष्टि रचना के उपयोगी प्रसंग सम्मिलित पाए जाते हैं।

गुगा गाथा में मारु देश राजस्थान के मारबाड़ राज्य के देवत्वपूर्ण शक्ति सम्पन्न वीर शासक गुगा चौहान की जीवन गाथा का गायन होता है जो अपनी शरीर-लीला समाप्ति के बाद अपने देवत्व गुणों के कारण देवता के रूप में पूजित हैं। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर, सोलन, मण्डी आदि जनपदों में गुगा देवता की बहुत मान्यता है। भादों मास के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को गुगा नौमी कहते हैं। इस तिथि को गुगा देवता का जन्मोत्सव सभी गुगा मढ़ियों (गुगा देव स्थलों) में बड़ी श्रद्धा और हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इससे पहले श्रावण पूर्णिमा रक्षा बन्धन से कृष्ण जन्माष्टमी तक गुगा गाथा गायक समूह जिसे मण्डली कहा जाता है, घर-घर जा कर गुगा की गाथा सुनाते हैं। गुगा गाथा का आरम्भ सृष्टि रचना के प्रसंग के साथ होता है। हमीरपुर जनपद में प्रचलित गुगा गाथा में सृष्टि रचना का प्रसंग निम्नलिखित रूप में गाया जाता है—

मूल रूप	*हिन्दी रूपान्तर*
न सो धरती,	*न धरती थी,*
न सो अम्बर,	*न आकाश था,*

न सो सूरज,
न सो चन्द्र,
न सो नौ लख तारा,
बरसेया धुन्धुकारा।
तां सो अलख गुरु,
ओमकारा।
मना ते गुरुआ,
मनसा साजी,
मनसा बनी करी आई।
कौल फुलां दी नौवत बेली,
रही पियालें जाई।
अगै बाबा बूढ़ा बैठे,
मनसा सीस नवाई।
किन छली,
किन भेजी मनसे,
कैंह मनसे तू आई।
हरतैं छली,
करतैं भेजी
मै गुरु दे पासे आई।
साढ़ तिरहथे,
माण्हू साजने
धरती बनयो नाही।
टंकभरी भभूता दिती बाबे,
लै मनसा तू आई।
टंक भर भभूता,
लई लई मनसे,
सैह झोलिया दे बिच पाई।
कौल फुलां दी नौवत बेली,
मनसा चढ़ी करी आई।
सोइने चिड़ी होई,
मनसा फिरदी,
चारों कुण्ठ उड़ाई।
आगै ता आगै,

न सूर्य था,
न चन्द्रमा था,
न नौ लाख तारे थे,
सर्वत्र धुआं ही धुआं व्याप्त था।
उस समय थे अलक्ष्य (अदृश्य) परमात्मा,
ॐकार स्वरूप।
परमात्मा ने मन से,
मनसा माता का सृजन किया,
मनसा माता साकार बन कर आई।
कमल फूल की बेल डाल के सहारे,
मनसा माता पाताल जा पहुंची।
सामने बूढ़े बाबा बैठे थे,
मनसा माता ने शीश नवाया।
किसने तुम से छल किया,
किसने तुम्हें भेजा मनसा,
किस काम से आई मनसा,
सृष्टिकर्त्ता ने छल किया।
सृष्टिकर्ता ने मुझे भेजा,
मैं परमात्मा के पास से आई।
साढ़े तीन हाथ के
मनुष्य बनाने हैं,
धरती बनी नहीं है।
बूढ़े बाबे ने थोड़ी सी धूल दी,
मनसा तू आई तो यह ले।
थोड़ी थोड़ी धूल,
ले लेकर मनसा ने,
वह झोली में भरी
कमल फूल के बेल के सहारे,
चढ़ कर मनसा लौट आई।
सोने दी चिड़िया बन कर,
मनसा चक्कर लगाने लगी,
चारों किनारे उड़ान भरी।
आगे–आगे,

माई मनसा चलदी,	*मनसा माता चलती,*
पीछे धरती,	*पीछे (धूल गिरने से) धरती,*
बनदी आई।	*बनती गई।*
धरती अम्बर,	*धरती आकाश,*
जोड़ जुड़े,	*संयुक्त हुए।*
बिन खम्भा,	*बिना खम्बे के,*
गगन लहाए।	*आकाश फैलाया,*
सूरज चन्द्र,	*सूरज चांद में,*
लोइन साजे,	*प्रकाश भरा,*
धुन्धकारा चुकाए।	*अन्धकार दमर कर दिया।*
फिरी माई मनसे,	*तब मनसा माता ने,*
तिन फल जाए,	*तीन फल पैदा किए,*
ब्रह्मा, विष्णु,	*वे ब्रह्मा, विष्णु,*
महोदव कहाए।	*महादेव कहलाए।*
ब्रह्मै वेद विचारिया,	*ब्रह्मा ने वेद का चिन्तन किया,*
विष्णुएं राज कमाए,	*विष्णु ने शासन चलाया,*
महादेवे जंगल आसन लाए।	*महादेव जंगल में आसन लगाकर तपस्यालीन हुए।*

इस प्रकार से लोक गाथाओं की कड़ियां महाशून्य तक पहुंचती है, जहां से सृष्टि रचना आरम्भ होती है। विद्वान मनीषियों ने इन लोक गाथाओं में सृष्टि रचना के विचार की परम्परा को स्थापित करने में तथा इसे समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी से लोक परम्परा में सृष्टि रचना की सार्वजनीनता और सार्वभौमिकता का अविरल प्रवाह स्पष्ट रूप से झलकता है जो विभिन्न जनपदों में पर्याप्त एकरूपता दर्शाता है और साथ ही देश–विदेश की परम्परा की शाश्वत प्रक्रिया से सूत्रबद्ध करता है।

गांव– दडूही, डाकघर–हमीरपुर
जिला हमीरपुर १७७००१ (हि०प्र०)

सृष्टि रचना की जलबिम्बी गाथा

चंचल कुमार सरोलवी

हिमाचल प्रदेश के चम्बा ज़िला में धार्मिक लोक गाथाओं के गायन की समृद्ध परम्परा प्रचलित है। धार्मिक लोक गाथाओं को यहां ऐंचली, आंचली, मुसाधा तथा कारक आदि नामों से जाना जाता है। ऐंचली और आंचली एक ही शब्द के उच्चारण की भिन्नता से दो रूप हो गए हैं। व्यवहार में ऐंचली शब्द का प्रचलन अधिक है, लेकिन कुछ लोग इसे आंचली भी कहते हैं। ऐंचली और मुसाधा में गाथा गायन की शैली में अन्तर पाया जाता है। ऐंचली में तो केवल गाथा का गायन होता है। मुसाधा में गाथा का प्रसंग गाने के उपरान्त बीच-बीच में कथा रूप में व्याख्या भी की जाती है। ऐंचली और मुसाधा में रामायण, महाभारत, शिव पुराण आदि वैदिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित गाथाएं सुनायी जाती है। कारक गाथाओं को गुगा जाहरपीर आदि देवी देवताओं की कथाओं का गायन होता है।

ऐंचली लोक गाथाओं के अन्तर्गत जलबिम्बी लोक गाथा का भी गायन किया जाता है। जलबिम्बी गाथा में सृष्टि रचना के सम्बन्ध में वर्णन उपलब्ध है। सृष्टि की रचना से पहले महाप्रलय में घोर अन्धकार छाया होता है और इस अन्धकार के बीच केवल जल ही जल होता है। यह अनन्त फैला जलाशय ही जलबिम्बी कहलाता है। इस जलबिम्बी से ही परमपिता परमात्मा की इच्छा से महाप्रलय के बाद की नयी सृष्टि की रचना आरम्भ होती है।

चम्बा में भगवान् शिव की पूजा के निमित्त नुआळा (नवाळा) नाम से एक धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन किया जाता है। मन्दिरों में प्राय: महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर नवाळा आयोजित होता है। इस पर्व में लोग घरों में भी नवाळा करते है। इसके अतिरिक्त घरों में कोई मनौती पूरी होने पर, विवाह के अवसर पर तथा नया घर बनाने पर गृह प्रवेश के समय नवाळा करने की परम्परा है। नवाळा में नौ व्यक्तियों की मुख्य भूमिका रहती है। इसीलिए नौ मण्हुए नवाळा अर्थात् नौ व्यक्तियों से नवाळा नाम इस अनुष्ठान का पड़ा है। नवाळा में नौ व्यक्ति होते हैं— एक घर मुहिया (आयोजनकर्त्ता घर का मुख्य), एक देवता का चेला, एक जोगी (नाथ सम्प्रदाय का धार्मिक कार्य से जुड़ा व्यक्ति) कटवाल और बटवाल नाम से आयोजन में कार्य सहयोगी दो व्यक्ति, तथा चार बन्दे। बन्दे नाम ऐंचली गायकों के लिए प्रयुक्त होता है। ये चार बन्दे गायन के साथ घड़ा थाली, ढोलक आदि पर वादन संगीत का भी कार्य करते हैं। नवाळा में ऐंचली गाथाओं का गायन जलबिम्बी ऐंचली से ही आरम्भ होता है। जलबिम्बी में सृष्टि रचना की प्रक्रिया का वर्णन निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत होता है —

मूल रूप	*हिन्दी रूपान्तर*
ना थिया धरती,	*न धरती थी,*
ना थिया गासा,	*न आकाश था,*
ना थिया मेरु कमलासा हां।	*न सुमेरु न कैलास था।*
ना थिया पौण,	*न पवन था,*
ना थिया पाणी,	*न पानी था,*
ना थिया चन्दरा,	*न चांद था,*
ना थिया सूरजा,	*न सूरज था,*
ना थिये नौ लक्ख तारे हां।	*न नौ लाख तारे थे।*
जलबिम्बी जलबिम्बी,	*सब ओर जलाशय ही जलाशय था,*
घोर निहारा हां।	*घोर अन्धकार था।*
तां थिया गुरु नियारा,	*तब केवल न्यारे गुरु परब्रह्म परमात्मा थे,*
इक हुंकार लेया अवतारा,	*परमात्मा की हुकांर (ॐकार) ध्वनि ने अवतार लिया,*
नाज गुरु लेया अवतारा,	*परम गुरु (परब्रह्म) अवतरित हुए,*
चारों पासे जिनी नज़र ढुलाई,	*उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई,*
जलबिम्बी घोर निहारा हां।	*घोर अन्धकार के बीच केवल जलाशय था।*
हुगतियो सामी ए हुगत कमाई,	*युक्तिकार स्वामी ने युक्ति से काम किया,*
अंग वो मरोड़ी,	*अंग को मरोड़ मसलकर,*
जिनी मलूणी बणाई,	*उसके मैल की एक गोली बनाई,*
जिस वो मलूणी दी,	*उस गोली को,*
खण्डी वो कराई,	*खण्डित किया,*
दैणे केरी धरती बणाई,	*दहिने खण्ड की धरती बनाई,*
बोये केरा गासा हां।	*बायें खण्ड का आकाश बनाया।*
धरती ते गास रक्खे वो बणाई,	*धरती और आकाश बना कर रखे,*
चार वो पासे जिनी नज़र ढुकाई,	*उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई,*
जलबिम्बी घोर निहारा हां।	*घोर अन्धकार के बीच केवल जलाशय था।*
हुगतिये सामीए हुगत कमाई,	*युक्तिकार स्वामी ने युक्ति से काम किया,*
बांमी माटी जिनी पैदा कराई,	*उन्होंने बांमी मिट्टी पैदा की,*
बांमी माटी रा दीया बणायां हां।	*उन्होंने बांमी मिट्टी का दीपक बनाया।*
बांमी दीवा बाळणा लाया,	*बांमी मिट्टी कर दीपक जलाने लगे,*
सेइयो दीया वकेया सहोणा हां।	*वह दीपक अच्छे ढंग से जल उठा।*
चार वो पासे जिनी नज़र ढुकाई,	*उन्होंने चारों ओर नज़र दौड़ाई,*
चार पासे सुन्न वो मुसाणी हां।	*चारों ओर श्मशान सा सुनसान था।*
धरती गास रक्खे मै बणाई,	*धरती और आकाश तो मैंने बना रखे,*

भोगण हारा न कोई हां,
हुगतिये गुरुए हुगत कमाई,
अंग वो मरोड़ी फिरी,
मलूणी बणाई,
मलूणी दी मनसा बणाई हां।
मनसा जो दित्ता जीवा दाना हां।
मनसा देवी भरे हुंगतारा,
मनसा जो होया अवतारा हां।
घड़िया मटोदी पलेया मटोदी,
दिन रात जोत सुहाए हां।
बारह वो वरहे दी मनसा जे होई,
मनसा दी खिल्ली जुआनी हां।
भरी नजर गुरुए चरणा दे पासे,
दरिश्टा दे फल देई जादे हां।
इक माह गिणदे दो माह होये,
त्रिया माह गिणणा जे लाया हां।
त्रिया माह गिणदे चौथा माह होये,
पंजुआं जे गिणण जे लाया हां।
पंच माह गिणदे छी माह होये,
सतुआं जे गिणणा लाया हां।
सत माह गिणदे अठ माह होये,
नौमां माह भरी पूरे आया हां।
पीठी वो कडाक्का पेटा वा मरोड़ा,
मनसा भरी पूरे आई हां।
पैहली सुआ जरमेया,
बरमा टिक्कीयाळा,
दुजिया विसन महाराजा हां।
त्रिज़ी सुआ जरमेया,
भोला सामी,
मन के दी रास जुड़ाये हां।
जरमे दे सूरे वो कर्मे दे पूरे,
हिन बेटे पंज कल्याणे हां।
बरमा विसनू महेस जे जरमे,

उपभोग करने वाला कोई नहीं है।
युक्तिकर्त्ता गुरु युक्ति की,
अंग को मरोड़ मसल कर फिर से,
मैल की गोली बनाई,
मैल के गोली की मनसा देवी बनाई।
मनसा देवी को जीवन शक्ति दी।
मनसा देवी ने ॐकार ध्वनि की,
मनसा देवी का अवतार हुआ।
घड़ी पल बीतते गए,
दिन रात ज्योति का सुन्दर प्रकाश फैलने लगा।
मनसा देवी बारह वर्ष की जो हुई,
मनसा देवी का यौवन खिल उठा।
गुरु महाराज ने उनके चरण पर दृष्टि डाली,
उस दृष्टि ने देवी को गर्भफल प्रदान किया।
एक मास गिनते दूसरा मास हो जाता,
तीसरे मास की गिनती होने लगती।
तीसरा मास गिनते चौथा मास हो जाता,
पांचवे मास की गिनती होने लगती।
पांचवे मास गिनते छठा मास हो जाता,
सातवें मास की गिनती होने लगती।
सातवां मास गिनते आठवां मास हो जाता,
भरा—पूरा नौवां महीना आया।
पीठ में प्रसूता की कड़ी पीड़ा और पेट में मरोड़ होती है,
मनसा माता की भरी—पूरी प्रसूता हुई।
पहली प्रसूता में जन्म,
तितल वाला ब्रह्मा,
दूसरी प्रसूता में विष्णु महाराज।
तीसरी प्रसूता में जन्मा,
भोलानाथ शिव स्वामी,
इन्होंने मन को आनन्दित किया।
ये जन्म से शूरवीर और कर्म के पूरे हैं,
ये बेटे पंच भौतिक तत्त्वों का कल्याण करने वाले हैं।
ब्रह्मा विष्णु शिव ने जो जन्म लिया,

तिन जीव होये परकासा हां।

दो बालक माता गोदी खलाए,
भोला सामी बणखण्डा पाया हां।
बडड़े होये बेटे जवान होये,
दिन दिन जोत सवाई हां।
नाज़ गुरु होया विरध सियाणा,
कुनी लैणे राज म्हारे हां।
हाजर सद्दो मेरे बरमा टिक्कीयाळा,

सेइयो लेला राज म्हारा हां।
केओ कम्म बणेया बापू,
केओ कम्म सरेया,
कुस कम्में हाजर सदाया हां।
असी ता होये बेटा विरध सयाणे,
तुसां लैणा राज म्हारा हां।
सिख वो बतायां बापू बुद्ध वो बतायां,
लेई लैला राज तुमारा हां।
परिथी पर बेटा रचना रचाणी,
अन्धघोर देणा मुकाई हां।
माता रखणी पिता भच्छणा,
ता लैण राज म्हारा हां।
इतणे बचन सुणी बेटा बरमें,
सुणी करी केओ गलांदा हां।
असी ता हिन बापू धर्मा दे जुड़े,
एड्डे एड्डे पाप कुणी लैणे हां।
हाजर सद्दो मेरे विसनू दुठाई,

सेइयो लेला राज म्हारा हां।
केओ कम्म बणया बापू,
केओ कम्म सरेया,
कुस कम्में हाजर सदाया हां।
असी ता होये बेटा विरध सियाणे,
तुसां लैणा राज म्हारा हां।
सिख वो बतायां बापू बुद्ध वो बतायां,

इन तीन जीव—विभूतियों से सब कुछ प्रकाशमय हो गया।
दो बालकों को माता ने गोद में खिलाया,
भोलनाथ स्वामी को वन खण्ड में भेज दिया।
बेटे बड़े हुए युवा हुए,
दिन-दिन प्रकाश ज्योति सवाई हुई।
परम गुरु वृद्धावस्था में जा पहुंचे,
हमारा सृष्टि संचालन का राज्य कौन लेगा।
तिलक वाले ब्रह्मा को उपस्थित होने का बुलावा भेजा,
वही हमारा शासन लेंगे।
क्या काम बनाऊं बापू,
क्या काम निपटाऊँ,
किस काम को उपस्थित होने का बुलावा दिया।
हम तो बेटा वृद्ध सियाने हो गए,
तुमने सृष्टि का हमारा शासन सम्भालना है।
शिक्षा बताना बापू ज्ञान बताना,
तुम्हारा शासन सम्भाल लूंगा।
बेटा पृथ्वी पर रचना करनी है,
अन्धकार को समाप्त करना है,
माता की रक्षा करे और पिता का भक्षण करें,
जो हमारा शासन ग्रहण करना।
इतना बचन सुन कर बेटा ब्रह्मा,
सुन कर क्या कहता है,
हम तो बापू धर्म से जुड़े हैं,
ऐसे ऐसे पाप कौन लेगा।
दूसरी ठांव से विष्णु के उपस्थित होने का बुलावा भेजा,
वही हमारा शासन सम्भाल लेगा।
बापू क्या काम बनाऊं,
क्या काम निपटाऊं,
किस काम से उपस्थित होने का बुलावा भेजा,
हम तो बेटा वृद्ध सियाने हो गए हैं,
तुमने हमारा शासन सम्भालना है।
शिक्षा बताना बापू ज्ञान बताना,

किया लैणा राज तुमारा हां।
परिथी पर बेटा रचना रचाणी,
अंधघोर देणा वो मुकाई हां।
माता रखणी पिता भच्छी लैणा,
ता लैणा राज म्हारा हां।
असी ता हिन बापू धर्मे दे जुड़े,
एड्डे एड्डे पाप कुनी करणे हां।
हाजर सद्दो मेरे भोले सामी,
सेइयो लेला राज म्हारा हां।
केओ कम्म बणेया बापू,
केओ काज सरेया,
कुस कम्में हाजर सदाया हां।
असी ता होये बेटा विरध सियाणे,
तुसां लैण राज म्हारा हां।
सिख वो बतायां बापू बुद्ध वो बतायां,
लेई लैला राज तुमारा हां।
चार खण्डे परिथवी रचना रचाणी,

अन्धघोर दैणा मुकाई हां।
माता रक्खी लैणा बेटा,
पिता भच्छी लैणा,
ता लैणा राज म्हारा हां।
धरत गास बेटा पक्के कराणे,
ता लैणा राज म्हारा हां।
चन्द सूरजा बेटा गास बसाणे ,
ता लैणा राज म्हारा हां।
नौ लक्ख तारा गास बसाणा,
ता लैण राज म्हारा हां।
किरकटा राणी गास बसाणी,
ता लैणा राज म्हारा हां।
घणीहर राजा गास बसाणा,
ता लैणा राज म्हारा हां।
बिजली भैणा बेटा गास बसाणी,
ता लैणा राज म्हारा हां।
चिड़ू पखेरू जियूना जे पाणै,

कैसे आपका शासन सम्भालना है।
बेटा पृथ्वी पर रचना रचानी हैं,
अन्धकार को समाप्त करना है।
माता को रखना पिता को भक्षण करना,
तो हमारा शासन प्राप्त करना।
हम तो बापू धर्म से जुड़े हैं,
ऐसे ऐसे पाप कौन करेगा।
भोलेनाथ स्वामी को उपस्थित होने का बुलावा भेजा,
वहीं हमारा शासन ग्रहण करेगा।
क्या काम बनाऊं बापू,
क्या काम निपटाऊं,
किस काम से उपस्थित होने का बुलावा भेजा।
हम तो बेटा वृद्ध सियाने हो गए हैं,
तुमने हमारा शासन ग्रहण करना है।
शिक्षा बताना बापू ज्ञान बताना,
तुम्हारा शासन सम्भाल लूंगा।
पृथ्वी चारों ओर के चार खण्डों की रचना रचानी है।
अन्धकार को समाप्त करना है।
माता की रक्षा करना बेटा,
पिता का भक्षण (आत्मसात्) करना है,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
धरती और आकाश बेटा सुस्थिर करना,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
चांद और सूरज आकाश में बसाने,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
नौ लाख तारे आकाश बसाने,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
कृतिकाएं रानी को आकाश में बसाना,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
बादल राजा आकाश बसाना,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
बिजली बहन बेटा आकाश बसानी,
तो हमारा शासन ग्रहण करना।
पंखधारी पक्षी को जीवन प्रदान करना,

ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
भेड़ बकरी बेटा रचना रचाणी,	*भेड़ बकरियों की बेटा रचना रचानी,*
ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
जिज्जू मकोड़ू रचना रचाणी,	*कीड़े मकोड़े की रचना रचाणी,*
ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
बिन जंघे बेटा नाग चलाणे,	*बिना पैर के बेटा नाग चलाने हैं,*
ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
सैंसर जूनी बेटा रचना रचाणी,	*हजारों योनि बेटा रचना रचाणी,*
ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
साढ़त्रिहात्था बंदा रचना रचाणी,	*साढ़े तीन हाथ के मनुष्य की रचना रचानी,*
ता लैणा राज म्हारा हां।	*तो हमारा शासन ग्रहण करना।*
हो मेरेया महादेवा महादेवा,	*हो मेरे महादेव मेरे महादेव,*
नाज़ गुरु लगा समझाणा,	*परम गुरु समझा रहे हैं,*
मेरेया महादेवा महादेवा हां।	*मेरे महादेव मेरे महादेव।*
नाज़ गुरु जो पीड़ सताई,	*परम गुरु को पीड़ा ने सताया,*
नाज़ गुरु वो स्वर्गा होया,	*परम गुरु स्वर्गारोहण कर गए,*
सिवा नैणा भरी भरी रोया,	*शिवजी नयन भर–भर रोने लगे,*
जिना लोकड़े दे बाबल मरदे,	*जिन लोगों के पिता मरते हैं,*
विवता पूंदी बड़ी भारी हां।	*उन पर भारी विपत्ति पड़ती है।*
नाज़ गुरुए जो दाग जो देणा,	*परम गुरु को अग्नि दाह देना है,*
अणदागी जगह दाग देणा हां।	*जिस जगह अग्निदाह न हुआ हो हां दाह संस्कार करना है।*
काळा काग जिनी हाज़र सदाया,	*उन्होंने काले कौए को उपस्थित होने का संदेश दिया,*
महादेवा कागा जो लगा समझाणा,	*महादेव कौए को समझाने लगे,*
तै लुकन्तरा फेरा जे पाणा,	*तुम लोकान्तर का चक्र लगाना,*
तैं अणदागी जगह हेरी आणी हां।	*जहां अग्निदाह न हुआ हो ऐसी जगह देख आना।*
काळा काग उड़ेया समाना,	*काला कौआ आसमान में उड़ा,*
काग लुकन्तरा फेरा पांदा,	*कौए ने लोक लोकान्तर में चक्र लगाया।,*
भूखा प्यासा ई उड़दा रहंया,	*भूखा प्यासा ही उड़ता रहा,*
अणदागी जगहा मिलदी न मूळा,	*अग्निदाह रहित मूल जगह नहीं मिलती,*
काळा काग तेरा हटी घरे आया,	*तेरा काला कौआ वापिस घर आया,*
अणदागी सिवा मिलदी न मूळा हां।	*शिवजी! अग्निदाह रहित मूल जगह नहीं मिलती।*

सिवा नैणा भरी भरी रूणा,
सिवा हुगतिए हुगत कमाई,
जिनी चनण बूटा लेया कटाई,
जिनी चनणे दे गलरु कराये,
वोंये हत्था पर चिखा चणई,
देणे हत्थे जिनी लाबुंआ लाया हां।
सिवा झरे झरे नैणा रूणां,
जिनी असत बटोरण लाये,
जिनी गंगा जो मनसा धारी,
बुझी जांदी गंगा सिव जी आया हां।
गंगा राणीए भेस बदलेया,
जिसा कन्नेया दा भेस बणाया,
गंगा विच वो रिहाट्टे आई,
गुड्डा गुड्डी का खेल जे पाया,
सिव मेरा वो चवाटे जो आया,
जिनी गंगा राणी पूछणा लाई,
सुण रिंडे छोकरिये — छोकरिये,
रिंडे गंगा जो रस्ता दखायां हां।
तिज्जो गंगा जो रस्ता दसांदी,
सुण मेरेया महादेवा महादेवा,
सत्ता जुगे दे तू कोल जे करेयां हां।
गंगा जो तू रस्ता बतायां,
जे तू मंगली वर तिज्जो देल्ला हां।
सिवा उत्तर दिसा जो चली जायां,
गंगा माई केरा मन्दर जे हूणा,
गंगा जाई करी असत रूढ़ायां
गंगा जाई करी करयां स्नाना हां,
गंगा जाई करी हटी मैं ईणा,
हटी इत्तेई चवाटे जो ईणा हां।
तिज्जो जे मंगली वर दैणा,
सिवा कोल वो करी चली पेया हां।
सिवा मने-मने खिड़-खिड़ हस्सेया,
गंगा भेस बदली जे आई,
मिज्जो छलणे जो चवाटे आई,
गुड्डा गुड्डी करी खेल रचाई हां।

शिव नयन भर-भर रोया,
युक्तिकार शिव ने युक्ति की,
उन्होंने चन्दन का वृक्ष काटा,
चन्दन के गोल ठेले कराए,
वायें हाथ पर चिता चिनाई,
दहिने हाथ से अग्नि लगाई है।
शिव झरमराते आंसू भरे नयनों से रोने लगे,
वह अस्थियां इकट्ठी करने लगे,
गंगा मनसा रूपधारी बनी,
गंगा जान गई शिवजी आया है।
गंगा रानी ने भेष बदला,
उसने कन्या का भेष बनाया,
बीच रास्ते में गंगा आई,
गुड्डा गुड्डी का खेल डाला,
शिव मेरा चौराहे पर आया,
वह गंगा रानी के पूछने लगे,
सुन रे चंचल लड़की हे लड़की,
अरी चंचल तू गंगा जाने का रास्ता दिखा।
तुम्हें मैं गंगा का रास्ता बताऊंगी,
सुन मेरे महादेव महोदव,
सत्युग के तू पवित्र वचन करे।
तू गंगा का रास्ता बता,
जो वर तू मांगेगी तुम्हें दूंगा।
शिव उत्तर दिशा की ओर चले जा,
गंगा मां का मन्दिर होगा,
गंगा जा कर अस्थियां प्रवाहित करना,
गंगा जा कर स्नान करना।
गंगा जा कर मैं वापिस आऊंगा,
वापिस हो कर यहीं चौराहे पर आऊंगा।
जो तू वर मांगेगी वह तेरे को दूंगा,
शिव पवित्र वचन करके चल पड़ा।
शिव मन ही मन खिलखिला कर हंसा,
गंगा भेष बदल कर आई,
मेरे से छल करने चौराहे पर आई,
गुड्डा गुड्डा का खेल रचा बैठी।

शिव उत्तर दिसा जो चली पेया,
सिवा असत गंगा वो रूढ़ाये,
सिवा गंगा न्हाई कित्तेया स्नाना,
सिवा उस जो चवाटे जो आया,
मैं गंगा न्हाई हटी वो आया,
जे मंगली सेइयो वर देल्ला हां।
सिवा मेरा किहां होणा उधारा,
मेरी किहां हूणी जै जै कारा हां,
कलियुग इक पैहर जे हूणां,
साढ़त्रिहात्था बंदा जे हूणां,

तेरा नां गंगा माई जे पूणां,
वंदे करले तेरा अस्नाना,
गंगा जल मझ अस्त रूढ़ाले,
तेरा भरलै जै जै कारा,
तां बुझे सिवे वचन करो रे,
इक वैरी तिज्यो मुक्कटा बसाला हां।
सिवा हटी करी धारा जो आया,
मैं ता बापू कने वचन कतोरे,
सिवा चली जांदे डुग्गियां सोचा,
सिवे हुगतिये हुगत कमाई हां।
लौंगा लाचियां की धूणी लाई,
सिवा चली गेया निंद्र पुमारा,
सिवा चली गेया बड़े अन्धघोरा,

मैं वचन करणे न पूरे,
मेरे सिवे जे हुगत कमाई हां।
जिनी रचना रचाणी जे लाई,
बिन वो थम्में जिनी गास टकाया,
चौणी वो खण्डा जिनी धरती बणाई,
धरती लाई वो बसाणी हां।
तू वो सुणेया मेरेया धौलेया बैला,
तै लैणे धरणी रे भारे हां।
बजर शिला पर बजर जे बछोआ,
तिस पर धौले दे पैरा हां।

शिव उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा,
शिव ने गंगा में अस्तियां प्रवाहित की,
शिव ने गंगा नहा कर स्नान किया,
शिव उसी चौराहे पर आया,
मैं गंगा नहा कर हट आया,
जो मांगेगी वही वर दूंगा।
शिव मेरा उद्धार कैसे होगा,
मेरी जय जय कार कैसे होगी।
कलियुग का एक पहरा होगा,
(मनुष्य के अपने हाथ के माप से) साढ़े तीन हाथ का मनुष्य होगा,
तेरा नाम गंगा माता पड़ेगा,
मनुष्य तेरा स्नान करेंगे,
गंगा जल में अस्थियां प्रवाहित करेंगे,
तेरी जय-जयकार करेंगे,
जो समझना शिव ने वचन किए,
एक बार तुम्हें मुक्कुट पर वसाऊंगा।
शिव हट कर पर्वत ढलान पर आया,
मैंने बापू के साथ बचन किए हैं,
शिव गहरी सोच में डूब गए,
युक्तिकार शिव ने युक्त की।
लौंग इलायची की धूनी लगाई,
शिव घोर निन्द्रा में चले गए,
शिव बड़े घोर अन्धकार (गहरी सोच) में चले गए,
मैं ने वचन को पूरा करना है,
मेरे शिव ने युक्ति से काम किया।
वह रचना रचाने लगे,
बिना खम्भे के उन्होंने आकाश का टिका दिया,
चारों ओर उन्होंने धरती बनाई,
धरती को व्यवस्था से बसाने लगे।
मेरे धवल बैल सुन,
तूने धरती का भार सम्भालना है।
वज्र शिला पर वज्र का विछौना है,
उस पर धवल बैल के पैर टिके हैं।

दैहणे सिंगा धरती उचकाई,
धरती रक्खी वो बसाई हां।
चंद सूरज जिनी गास बसाए,
नौ लक्ख तारा गास बसाए,
किरकटा राणी गास बसाई,
घणीहर राजा गास बसाए,
बिजली भैणा गास बसाई,
चिड़ू पखेरू रचना रचाई,
भेड़ बकरी सामी रचना रचाई,
जिज्जू मकोड़ू सामी रचना रचाई,
सैंसर जूनी सामी धरणी बसाई,
हुगतिये सामीए हुगत कमाई,
विजन मनुखे संसार न बसदा,
मनुख उपाणा लाया हां।
जिनी घरिठू मिट्ठू बंदा बणाया,

उनी बंदे कै कम्म लाया हां।
ना वो पांदे घर ना पांदे वारा,
सौई कुड्डी रैहन गुजारा हां।
भोले सामीए हुगत कमाई,
घरिठू मिट्ठू छड़ेया वो छपाई हां।
हुगती सामी मेरे हुगत कमाई,
नौ गाजिया छड़ेया वो बणाई हां।
थोड़े दिना ताई केओ घर वारा,
केओ करणे न कम कारा हां।
ऐण गोले दी बरखा जे लाई,
नौ गाजिया छडेया छुपाई हां।
हुगतिए सामीए हुगत कमाई,
सोने दा मनुख वो बणायां हां।
ना वो बंदा हिलदा न वो बंदा डुळदा,
ना वो भरदा हुंगतारा हां।
सोने केरा मनुख सिवे छडेया भनाई,
चांदी केरा मनुख वो बणायां हां।
ना बंदा हिलदा ना बंदा डुळदा,
नेहियो भरदा हुंगतारा हां।

दाहिने सींग पर धरती को उचका कर,
धरती अपने ऊपर स्थापित की है।
चांद सूरज उन्होंने आकाश में बसाए,
नौ लाख तारे आकाश में बसाए,
कृतिकाएं रानी आकाश बसाई,
मेघ राजा आकाश बसाए,
बिजली बहन आकाश बसाई,
पंखधारी पक्षियों की रचना की,
स्वामी ने भेड़ बकरियों की रचना की,
कीड़े-मकोड़ों की स्वामी ने रचना की,
हजारों योनियां स्वामी धरती पर बसाई,
युक्तिकर्त्ता स्वामी ने युक्ति की,
बिना मनुष्य के संसार नहीं बसता,
मनुष्य को पैदा करने लगे।
घरिठू मिट्ठू (छोटे-छोटे मुट्ठी भर) मनुष्य बनाये,
उन मनुष्यों को किस काम में लगाएं।
न वे घर डालते न आवास डालते,
गुफा में सो कर समय बिताते।
भोले स्वामी ने युक्ति की,
घरिठू मिट्ठू का लोप कर दिया।
युक्तिकार स्वामी ने युक्ति की,
नौ गज लम्बा मनुष्य बनाया।
थोड़े दिनों के क्या करना घरवार,
किस लिए करना कामकार।
ओलों के गोले बरसाए।
नौ गज मनुष्य का लोप कर दिया।
युक्तिकर्त्ता स्वामी ने युक्ति चलाई,
सोने का मनुष्य बनाया।
वह मनुष्य न हिलता है न डुलता है,
न हुंकार भरता है।
सोने का मनुष्य शिव ने तोड़ दिया,
चांदी का मनुष्य बनाया।
न मनुष्य हिलता है न डुलता है
न ही हुंकार भरता है।

चांदी केरा मनुख भन्नी वो सुट्टया,
पीतळी रा मनुख वो बणायां हां।
ना बन्दा हिलदा ना वो डुळदा,
नेहियो भरदा हुंगतारा हां।
पीतळी रा मनुख भन्नी सुटाया,
तांबे दा मनुख वो बणायां हां।
ना बंदा हिलदा न वो डुळदा,
नेहियो भरदा हुंगतारा हां।
तांबे दा मनुख भन्नी वो सुटाया,
बांमी माटी लगेया वो मंगाणा हां।
बांमी माटी दा मनुख बणायां,
भर मनुखा हुंगतारा हां।
ना बंदा हिलदा ना बंदा झुलदा,
ना वो भरदा हुंगतारा हां।
भोले सामी जांदे अन्धघोरा,
भोले सामी दिंदे सराफा हां।
थोड़े दिना ताईं भरे हुंगतारा ,
नदी कनारे फिरी धुंधकारा हां।
साढ़त्रिहत्था बंदा भरदा हुंगतारा,
खुशी दा नी सामी दा ठकाणा हां।
साढ़ त्रिहत्था बंदा केओ लगा बोलणा,
जोळे हत्थे अरजां कै लांदा हां।
किल्ले किहां रैहणा किल्ले किहां बैहणा,
जोड़ी पूणी तिज्जो वो बणाणा हां।
सुणी करी अरज साढ़त्रिहत्थे दी,
सामी लगा हुगत कमाणा हां।
हुगतिये सामीए हुगत कमाई,
बांमी माटी फिरी वो मंगाई हां।
दैहणे अंगे दी मलूणी बणाई,
बांमी मिट्टी कने वो मलाई हां।
हुगतिए सामीए हुगत कमाई,
मलूणी जो दित्ता जीवादानां हां।
मदीन बणाई मेरे भोले सामी,
भर वो मदीने हुगतारा हां।
मदीना दित्ता भरी हुंगतारा,

चांदी का मनुष्य तोड़ फेंका,
पीतल का मनुष्य बनाया।
न मनुष्य हिलता न डलता,
न ही हुंकार भरता है।
पीतल का मनुष्य तोड़ फेंका,
तांबे का मनुष्य बनाया।
न मनुष्य हिलता है न डुलता है,
न ही हुंकार भरता है।
तांबे का मनुष्य तोड़ फैंका,
बांमी मिट्टी मंगवा ली।
बांमी मिट्टी का मनुष्य बनाया,
मनुष्य हुंकार भर दे।
न मनुष्य हिलता है न डुलता है,
न ही हुंकार भरता है।
भोले स्वामी गहरी सोच में डूब जाते हैं,
भोले स्वामी शाप देते हैं।
कुछ दिन के लिए हुंकार भरेगा,
फिर नदी के किनारे धूं धूं जलेगा।
साढ़े तीन हाथ के मनुष्य ने हुंकार भरी,
स्वामी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।
साढ़े तीन हाथ का मनुष्य क्या बोलने लगता,
हाथ जोड़ के क्या प्रार्थना करता है।
अकेला कैसे रहूंगा अकेला कैसे बैठूंगा,
तुम्हें जोड़ी बनानी पड़ेगी।
साढ़े तीन हाथ के मनुष्य की प्रार्थना सुन कर,
स्वामी युक्ति करने लगे।
युक्तिकार स्वामी ने युक्ति की,
फिर से बांमी मिट्टी मंगवाई।
दाहिने अंग के मैल की गोली बनाई,
उसे बांमी मिट्टी मिला दिया।
युक्तिकर्त्ता स्वामी ने युक्ति की,
मैल की गोली को जीवन शक्ति दी।
मेरे भोले स्वामी ने मादा (नारी) बनाई,
नारी हुंकार भर दे।
नारी ने हुंकार भरी,

सामी मेरे रचना रचाई हां।	*मेरे स्वामी ने रचना रचाई।*
साढ़त्रिहत्था बंदा पूछणा जे लाया,	*साढ़े तीन हाथ के मनुष्य से पूछने लगा,*
सामी मेरे पूछणा कै लाया हां।	*स्वामी क्या पूछने लगे हैं।*
कै वो तू कमाला कै वो खाल्ला,	*तू क्या कमाएगा क्या खाएगा,*
कै वो मेरे लेखे तू लाल्ला हां।	*क्या मेरे हिस्से में तू लगाएगा।*
इक हेसा खाल्ला तिन लेखे लाल्ला,	*एक हिस्सा खाऊंगा तीन हिस्सा लगाऊंगा,*
रात दिन तेरा गुण गाल्ला हां।	*रात दिन तेरा गुण गाऊंगा।*
ऐओ भगती तिज्जो पुग्गेया नी जाणी,	*ऐसी भक्ति तुम से निभायी नहीं जाएगी,*
बंदेया मैं तिज्जो बुद्ध समझाणी हां।	*मनुष्य मैं ने तुम्हें बुद्धि ज्ञान समझाना है।*
तू तिन हेसे खायां इक लेखे लायां,	*तू तीन हिस्से खा एक हिस्सा मेरे लिए लगा,*
ऐओ तेरा जग्ग मनजूरा हां।	*तेरा यही यज्ञ मुझे स्वीकार है।*
सच वो गलांगा बरम फला पांगा,	*सच बोलेगा ब्रह्म फल प्राप्त करेगा,*
झूठ जे गलांगा नरका जो जांगा हां।	*झूठ बोलेगा तो नरक में जाएगा।*
धर्म कमांगा वैकुण्ठा जो जांगा,	*धर्म कमाएगा बैकुण्ठ को जाएगा,*
मनमर्जी फल पांगा हां।	*मन में सोचा फल पाएगा।*
धरमी राजे बेड़ा जे बणाया,	*धर्म पालक राजा ने नौका बनाई,*
पापी ते धरमी दूए लंघ लाया हां।	*पापी और धर्मी दोनों को पार लगाने लगे।*
धरमी दे बेड़े होई जांदे पार,	*धार्मिक लोगों के बेड़े पार लग जाते हैं,*
पापी डूबी डूबी मरदे हां।	*पापी बीच में ही डूब-डूब कर मर जाते हैं।*
ए भगुआने कसमा जे पाई,	*यह भगवान् ने शपथ डाली है,*
रचना छड़ी वो रचाई हां।	*रचना रचा दी गई है।*
सिव सामीए कैसी रचना रचाई,	*शिव स्वामी ने कैसी रचना रचाई है,*
सब किच्छ छड़ेया वो बणाई हां।	*सृष्टि में सब कुछ बना दिया है।*

गांव तथा डाकघर – सरोल,
जिला – चम्बा (हि०प्र०)

ऋषि परम्परा में वसिष्ठ ऋषि

रवि ठाकुर

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी, कलियुगाब्द ५११६ (१७ मई, २०१४) को ***हिमाचल में ऋषि परम्परा*** विषय पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति के मन्त्री श्री शेर सिंह जी ने की। इस संगोष्ठी में निर्णय हुआ कि नेरी शोध संस्थान द्वारा ***हिमाचल में ऋषि परम्परा*** प्रकल्प पर सुनियोजित कार्य होगा। संस्कृत महाविद्यालय चकमोह के प्राचार्य डॉ. ओम दत्त सरोच इस महत्त्वाकांक्षी प्रकल्प के संयोजक होंगे।

इसी प्रकल्प के अन्तर्गत आषाढ़ कृष्ण दशमी कलियुगाब्द ५११६ (२० जून, २०१४) के शोध संस्थान में ***ऋषि परम्परा में वसिष्ठ ऋषि*** विषय पर परिसंवाद आयोजित हुआ जिसमें डॉ. रमेश शर्मा ने पत्र वाचन किया। डॉ. रमेश शर्मा ने बताया कि हिमाचल प्रदेश में वसिष्ठ ऋषि का प्रमुख आश्रम कुल्लू जिला के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त मनाली शहर के समीप वशिष्ठ गांव में है। यहां के गर्म जल कुण्ड वशिष्ठ कुण्ड के नाम से आज विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने बताया कि ब्रह्मा के मानस

पुत्र वसिष्ठ ऋषि के पुत्र शक्ति ऋषि, पौत्र पराशर ऋषि और आगे पराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास तथा वेदव्यास के पुत्र शुकदेव मुनि हैं। भारतीय संस्कृति के पोषक इन सभी ऋषियों का हिमाचल की धरती से गहरा सम्बन्ध है जिस पर व्यापक शोध की आवश्यकता है जो हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के अध्ययन में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

इस अवसर पर नेरी शोध संस्थान के केन्द्रीय समन्वयक श्री चेत राम गर्ग ने विद्वानों से अनुरोध किया कि इस प्रकल्प पर संस्थान में प्रति मास संगोष्ठी हो और अधिकाधिक विद्वानों को प्रकल्प से जोड़ कर परिणाममूलक लक्ष्य के लिए हम प्रयत्नशील रहें। शोध संस्थान के सचिव श्री राजेन्द्र शर्मा ने बतलाया कि इस सम्बन्ध में अगला परिसंवाद श्रावण कृष्ण नवमी के दिन २० जुलाई को होगा। इस परिसंवाद में डॉ. ओम दत्त सरोच, डॉ. सुरेश सोनी, श्री भूमिदत्त शर्मा, श्री अश्वनी शर्मा, श्री जगवीर चन्देल, श्री प्रवीण भट्टी, श्री राजकुमार सहित अनेक विद्वान उपस्थित थे।